मान मन्दिर बरसाना

मासिक पत्रिका, अक्टूबर २०२३, वर्ष ७, अंक १०

मूल्य १० /-

श्री राधा अष्टमी नाटक २०२३,
रस मंडप, गह्वरवन, बरसाना

अनुक्रमणिका

विषय- सूची

पृष्ठ- संख्या

१ परम संयमी श्रीकृष्णभक्त 'अर्जुन' ०५
२ मोह-विभंजनी 'श्रीगीताजी' ०८
३ गौरवशालिनी 'भारतीय संस्कृति' १२
४ कामना ही कृपणता १४
५ सच्ची शान्ति 'प्रसन्नता' १६
६ श्रीसेवाराधना ही दिव्य तप १७
७ श्रीकृष्ण प्रेमियों का अन्तरंग भाव २०
८ ब्रजवासियों की विरह-दशा २४
९ गोपियों के सत्संग से बने ब्रजभावुक 'उद्धवजी'.....२६
१० अर्जुन का अहं शमन २९
११ असली आध्यात्मिकता 'विशुद्ध भक्ति'.....३२

|| राधे किशोरी दया करो ||
हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | –

पूज्य श्रीबाबामहाराज कृत नित्य स्तुति-पद

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**
प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**
mob. **राधाकांत शास्त्री** 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"
*** योजना ***
अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ७:३० से ८:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत ३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

उर्वशी जैसी सुन्दरी, जो स्वर्ग की सर्वोत्कृष्ट अप्सरा थी, वह यदि काममोहित होकर किसी मनुष्य तक पहुँचे और अपनी कामजनित भाव-भंगिमाओं से उस भूलोकवासी प्राणी को आकर्षित करने लगे तो वह व्यक्ति अपने को कितना सौभाग्यशाली अनुभव करेगा, परन्तु वही व्यक्ति यदि उस अप्सरा में मातृभाव दर्शन कर अपने को कृतार्थ माने तो वह कैसा अलौकिक व अनिन्द्य महापुरुष होगा ।

हम बात कर रहे हैं नारायण के नित्य सखा नरावतार अर्जुन की, जिन्होंने उर्वशी के शाप को स्वीकार कर लिया किन्तु उसके कुसंग को नहीं; ऐसे महापुरुष हमारी संस्कृति-सभ्यता के प्रेरणादायक महान व्यक्तित्व हैं । आज हमारे समाज को इन कामवासनाओं ने अन्धा बना दिया है । भला कोई अन्धा किसी अन्धे को किस प्रकार दिव्य प्रकाश तक पहुँचा सकता है ? जिनको नारायण का संग प्राप्त है, वह नर सदा-सर्वदा नारायण का ही होकर नारायण स्वरूप ही हो जाता है । सदा सत्संग ही करो, दिव्य बनो और झूठी वासनाओं में पड़कर अनन्त अन्धकार को प्राप्त नहीं हो ।काम-क्रोधादि हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ (श्रीगीताजी ३/३७)

राधाष्टमी (राधा जन्मोत्सव) के पावन पर्व पर हमारे गुरुदेव की प्रेरणा से इस वर्ष इस महानायक (अर्जुन) के चरित्र के माध्यम से मान मन्दिर कला अकादमी ने सभी का मार्ग दर्शन किया ।उनके नाट्य मंचन में दिखायी पड़ा कि बड़े से बड़ी विभूतियों को भी यदि कुसंग मिलता है तो उनकी बुद्धि भी सद्-असद् का विवेक खो बैठती है । भक्ति के आचार्य कहे जाने वाले भीष्म पितामह तक यह सामर्थ्य नहीं जुटा पाये कि कौरवों का विरोध कर निर्वस्त्र की जा रही द्रौपदी का सहारा बन सकें । द्रोण, कृपाचार्य सहित सभी गुरुजन सिर झुकाकर बैठे रहे ।

जीवन में संग का बड़ा महत्त्व है । सबका सहारा छोड़कर केवल कृष्णाश्रय लेने वाले पाण्डवों को ऐसे-ऐसे दिग्गज परास्त नहीं कर पाये, जिनके समुदाय में कितने ही योद्धा अमर थे । आश्रय लेना है तो अर्जुन की भाँति एकमात्र केवल श्रीहरि का ही लेना चाहिए ।एक क्षण के कुसंग ने अजामिल को महापापी बना दिया और प्रतापभानु जैसे राजा को रावण बना दिया । हमारे ऋषियों-महापुरुषों ने हमें बहुत कुछ दिया है । हम अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को बनाये रखें और प्रेरणास्पद साहित्य व महापुरुषों के आश्रय से अपने को सुरक्षित रख सकें, ऐसी हमारी कामना है ।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

परम संयमी श्रीकृष्णभक्त 'अर्जुन'

अर्जुन भगवान् कृष्ण के परम भक्त और महाभारत के विशिष्ट नायक हैं । बदरिकाश्रम पर निवास करने वाले भगवान् नर-नारायण में अर्जुन को भगवान् नर का अवतार भी माना जाता है । राजा पाण्डु के पुत्र पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाये । पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं – कुन्ती और माद्री । एक ऋषि के शाप के कारण पाण्डु सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थे । कुन्ती को बचपन में ही दुर्वासा ऋषि की सेवा के फलस्वरूप एक मन्त्र प्राप्त हुआ था, जिसके प्रभाव से वह जिस किसी भी देवता को आवाहन करना चाहे, वह उनके सामने प्रकट होकर उनकी कामना पूर्ण करने को विवश था । अतः पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि तुम सन्तान प्राप्ति के लिए देवताओं का आवाहन करो, तब धर्मराज के संयोग से युधिष्ठिर और वायुदेव के संयोग से भीम का जन्म हुआ । इसके बाद पाण्डु को यह लालसा हुई कि मुझे एक ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो संसार में सर्वश्रेष्ठ हो । देवताओं में सबसे श्रेष्ठ इन्द्र ही हैं । यदि वे किसी प्रकार संतुष्ट हो जाएँ तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुत्र का दान कर सकते हैं । ऐसा विचार करके उन्होंने कुन्ती को एक वर्ष तक व्रत करने की आज्ञा दी और वे स्वयं सूर्य के सामने एक पैर से खड़े होकर बड़ी एकाग्रता के साथ उग्र तप करने लगे । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और बोले – 'मैं तुम्हें एक विश्वविख्यात, ब्राह्मण, गौ और सुहृदों का सेवक तथा शत्रुओं को सन्तप्त करने वाला श्रेष्ठ पुत्र दूँगा ।' तदनन्तर पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि मैंने देवराज इन्द्र से वर प्राप्त कर लिया है । अब तुम पुत्र के लिए उनका आवाहन करो । कुन्ती ने वैसा ही किया, तब इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने अर्जुन को उत्पन्न किया । अर्जुन के जन्म के समय आकाशवाणी ने अपने गम्भीर स्वर से कहा – 'कुन्ती ! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन और भगवान् शंकर के समान पराक्रमी तथा इन्द्र के समान अपराजित होकर तुम्हारा यश बढ़ाएगा । जैसे विष्णु ने अपनी माता अदिति को प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा । यह बहुत से सामन्तों और राजाओं पर विजय प्राप्त करके तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा । स्वयं भगवान् रुद्र भी इसके पराक्रम से प्रसन्न होकर इसे अस्त्र दान करेंगे । यह इन्द्र की आज्ञा से निवात कवच नामक असुरों को मारेगा और सारे दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त करेगा ।'

युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पाण्डु की ज्येष्ठ (बड़ी) पत्नी कुन्ती के पुत्र थे तथा नकुल और सहदेव पाण्डु की छोटी पत्नी माद्री के पुत्र थे । पाण्डवों के जन्म के थोड़े समय पश्चात् ही उनके पिता पाण्डु की मृत्यु हो गयी थी । माद्री अपने पुत्रों को कुन्ती को सौंपकर अपने पति के साथ सती हो गयी थीं । कुन्ती ने ही अपने पुत्रों के साथ ही माद्री के पुत्रों का भी पालन-पोषण किया था । पाँचों पाण्डव अपनी माता कुन्ती के संरक्षण में रहा करते थे । अर्जुन कुन्ती के सबसे छोटे पुत्र थे । अर्जुन बचपन से ही बड़े ही मातृ भक्त, परम धार्मिक, सदाचारी और वीर प्रकृति के थे । ये अपने भाइयों के प्रति भी बहुत स्नेह करते थे । पाण्डु की मृत्यु के कारण अन्धे होने पर भी उनके बड़े भाई धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर का राजा बनाया गया । इनके सौ पुत्र थे, जो कौरव कहलाये, इनके सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था । विधवा होने के कारण कुन्ती को अपने पाँचों पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र के संरक्षण में रहना पड़ा । भीष्म पितामह नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, उन्होंने हस्तिनापुर राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व ले रखा था । उनकी प्रेरणा से धनुर्वेद के विशिष्ट ज्ञाता द्रोणाचार्य को पाण्डवों और कौरवों को धनुष विद्या सिखाने का कार्य सौंपा गया । द्रोणाचार्य के सभी शिष्यों में अर्जुन ही सबसे प्रमुख धनुर्धर बने । वे अपनी गुरु भक्ति के कारण गुरु द्रोणाचार्य के प्रमुख कृपापात्र और उनकी विशेष प्रीति के भाजन बने । यहाँ तक कि द्रोणाचार्य अर्जुन के विशेष गुणों के कारण अपने पुत्र अश्वत्थामा से भी अधिक स्नेह अर्जुन से करते थे । इसीलिए उन्होंने अर्जुन को धनुष विद्या का सम्पूर्ण कौशल सिखा दिया था । वीर होने के साथ ही अर्जुन बड़े ही संयमी-सदाचारी, अपनी माता एवं बड़े भाइयों के आज्ञाकारी, परम धार्मिक तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय सखा व उनके अनन्य भक्त थे । अर्जुन कितने बड़े कृष्ण भक्त थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भगवान् कृष्ण ने सृष्टि के आरम्भ

में जो गीता ज्ञान सबसे पहले सूर्यदेव को प्रदान किया था, वह कालक्रम से नष्ट हो गया था, उसको द्वापर युग के अन्त में फिर से उन्होंने अर्जुन को प्रदान किया और इसका कारण बताते हुए भगवान् ने अर्जुन से कहा –

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥

(गीता ४/३)

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है ।

प्रिय सखा और भक्त होने के कारण ही भगवान् के द्वारा उन्हें परम गोपनीय गीता का ज्ञान प्रदान किया गया और उनके माध्यम से ही गीता का यह सर्वकल्याणकारी सन्देश कलिकाल में सारी मानव जाति को प्राप्त हो सका ।

धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन पाण्डवों से अकारण ही बहुत द्वेष किया करता था । उसने पाण्डवों के प्रति बहुत अन्याय किया । अन्धे धृतराष्ट्र पुत्र मोह के कारण उसकी किसी बात का विरोध नहीं करते और वह जैसा चाहता, अपनी दुष्ट बुद्धि के अनुसार पाण्डवों के अहित के लिए वैसा ही किया करता था ।

धनुष विद्या सिखाने के बाद एक दिन द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा ली । उन्होंने एक बड़े से वृक्ष की डाल पर एक पक्षी की प्रतिमा को रख दिया, फिर कौरव-पाण्डव आदि अपने शिष्यों को बुलाकर उनसे कहा – 'देखो, इस पेड़ की डाल पर रखे पक्षी की आँख पर तुम लोगों को अपने बाण से निशाना लगाना है ।' इसके बाद उन्होंने एक-एक कर सभी शिष्यों को पास बुलाकर उनसे पूछा कि तुम्हें पेड़ की डाल पर क्या दिखायी दे रहा है । सबसे पहले उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी देता है ? युधिष्ठिर बोले – 'गुरुदेव ! मुझे यह वृक्ष, उसकी डाल पर पक्षी तथा आप और यहाँ स्थित सभी विद्यार्थी दिखायी दे रहे हैं ।' युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने उनको वहाँ से हटा दिया और अन्य विद्यार्थियों को बुलाया और वही प्रश्न किया । सभी विद्यार्थी यही कहते कि मुझे पेड़, पक्षी और आप दिखायी देते हैं किन्तु जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर उनसे पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है तो उन्होंने कहा – 'गुरुदेव ! मुझे तो पक्षी की आँख के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी देता है ।' अर्जुन की बात सुनकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और बोले – 'हाँ ! अब तुम पक्षी की आँख पर निशाना लगाओ ।' गुरु आज्ञा से फिर अर्जुन ने पक्षी की आँख पर अपने बाण से निशाना लगा दिया ।

इस प्रकार देखा जाए तो द्रोणाचार्य के सभी शिष्यों में धनुष विद्या में अर्जुन के समान कुशल धनुर्धर कोई और नहीं था । इसी प्रकार वे इन्द्रिय भोगों से विरक्त कितने अधिक संयमी थे, इसका प्रमाण मिलता है, जब महाभारत युद्ध के पहले अर्जुन को अस्त्र विद्या की शिक्षा के लिए इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग में जाना पड़ा था । वहाँ इन्द्र ने अर्जुन को इतना अधिक सम्मान दिया कि उन्हें अपने सिंहासन पर अपने साथ ही बैठाया । एक दिन अर्जुन इन्द्र के साथ उनके सिंहासन पर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत संगीत का कार्यक्रम देख रहे थे । उस समय उर्वशी अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन कर रही थी । अर्जुन भी संगीतशास्त्र (गान और नृत्य कला) के मर्मज्ञ थे । वे उर्वशी के उत्कृष्ट नृत्य को मुग्ध दृष्टि से देख रहे थे । उर्वशी स्वर्ग की अप्सराओं में सर्वप्रमुख और सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी है, उससे मिलने के लिए बड़े-बड़े देवता लालायित रहते हैं । जब अर्जुन उर्वशी की ओर दृष्टि गड़ाकर देख रहे थे तो उसने सोचा कि मैं स्वर्ग की सबसे अधिक सुन्दर अप्सरा हूँ, इसलिए अर्जुन मेरे रूप पर आसक्त हो गये हैं और मुझसे मिलना चाहते हैं । स्वयं अर्जुन भी इतने सुन्दर थे कि उर्वशी भी उनके प्रति कामासक्त होकर उनसे मिलन की कामना करने लगी । इधर जब इन्द्र ने देखा कि अर्जुन एकटक उर्वशी की ओर देख रहे हैं तो उन्होंने भी यही समझा कि अर्जुन उर्वशी के रूप के प्रति आसक्त है, अतः अर्जुन का उर्वशी से मिलन होना चाहिए । इन्द्र ने उर्वशी को बुलाकर उससे कहा कि अर्जुन तुम्हारे रूप के प्रति आसक्त है, अतः तुम अर्जुन के निवास स्थल पर जाकर उसे सुखी करो । उर्वशी तो पहले से ही अर्जुन के प्रति आसक्त होकर उनसे मिलन के लिए आतुर हो रही थी और जब इन्द्र की आज्ञा हो गयी तब तो वह सुन्दर श्रृंगार से सुसज्जित होकर रात्रि के समय स्वर्ग में स्थित अर्जुन के

निवास स्थल पर पहुँची । उर्वशी को देखकर अर्जुन ने उसे प्रणाम किया और उसके आने का कारण पूछा । उर्वशी ने कहा कि तुम नृत्य के समय मुझे अपलक दृष्टि से देख रहे थे, तुम मेरे प्रति कामासक्त हो गये थे, इसलिए तुम्हारी कामना की पूर्ति के लिए देवराज इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । उर्वशी की बात सुनकर अर्जुन ने अपने कान बन्द कर लिए और विनम्रतापूर्वक कहा – 'ये आप क्या कह रही हैं ? मैं नृत्य करते समय आपके रूप के प्रति कामासक्त होकर आपको नहीं देख रहा था, अपितु मैं स्वयं गान और नृत्य कला का बड़ा प्रेमी हूँ, अतः उस समय मैं आपकी अद्भुत नृत्य कला के प्रति मुग्ध होकर आपके नृत्य को देख रहा था, साथ ही मैं यह भी सोच रहा था कि आप हमारे वंश के पूर्वजों की माता हैं, इसलिए मैं तो आपको अपनी माता के भाव से आदरपूर्वक दृष्टि से देख रहा था । आपके प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का कोई काम भाव नहीं है ।' अर्जुन की बात सुनकर उर्वशी रुष्ट होकर बोली – 'अर्जुन ! मैं स्वर्ग की सर्वाधिक सुन्दरी अप्सरा हूँ । बड़े-बड़े देवता, यहाँ तक कि स्वयं देवराज इन्द्र भी मुझसे मिलने के लिए लालायित रहते हैं । मैं इन्द्र की आज्ञा से तुम्हें तृप्त करने के लिए आई हूँ, इसलिये मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करो ।' अर्जुन उर्वशी के काम प्रस्ताव को सुनकर लज्जित हो गये और उन्होंने उर्वशी से कहा कि आप मेरी माता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ । क्या कभी माता और पुत्र के मध्य कामभोग सम्भव है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता, मैं कभी आपके साथ भोग नहीं कर सकता हूँ । अर्जुन की बात सुनकर कुपित होकर उर्वशी ने कहा – 'यह स्वर्ग है और हम अप्सराओं का सृजन स्वर्ग में आने वाले देवरूप पुरुषों की काम तृप्ति के लिए ही हुआ है । स्वर्ग में माँ-बेटे का कोई सम्बन्ध नहीं होता है । मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ, तुम मेरे पुत्र नहीं हो । इन्द्र की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आई हूँ, यदि तुम मेरे साथ रमण नहीं करोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगी और तुम अपने पुरुषत्व से च्युत होकर नपुंसक बन जाओगे ।' उर्वशी के शाप देने की बात सुनकर भी अर्जुन अपने धर्म से विचलित नहीं हुए और उन्होंने निर्भीकता के साथ उर्वशी से कहा – 'आप मेरी पूज्या माँ हैं और मैं आपका पुत्र हूँ, मेरा आपके साथ कामभोग का सम्बन्ध कदापि नहीं हो सकता, भले ही आप मुझे शाप देकर नपुंसक बना दें, यह मुझे स्वीकार है किन्तु अधर्म का मार्ग मैं कभी नहीं ग्रहण कर सकता हूँ ।' अर्जुन के पूर्ण निष्कामता भरे सत्य वचन सुनकर उर्वशी खिसियाकर वहाँ से चली गयी । उर्वशी एक ऐसी अप्सरा थी, जिसको देखकर देवता तो क्या बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक का मन काममय हो जाता था और वह स्वयं अर्जुन के प्रति कामासक्त होकर उनके पास गयी थी और उनसे भोग की याचना कर रही थी परन्तु धन्य हैं अर्जुन के सुदृढ़ संयम को कि नपुंसक बनने का शाप स्वीकार कर लिया किन्तु उर्वशी के साथ भोग करना स्वीकार नहीं किया ।

.....

सतत् संयमित जीवन से ही हमारा श्रीइष्ट-प्रेम अनुदिन (निरन्तर) बढ़ता है, जिससे विशुद्ध भक्तिमय सुगन्ध जन-जन में सहज ही फैलने लगती है ।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का AccOunt number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd ,
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. - 9927916699

मोह-विभंजनी 'श्रीगीताजी'

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

(गीतामाहात्म्य ६)

समस्त उपनिषद गायें हैं और 'गोपालकृष्ण' गोपालन और गोदोहन करने वाले ग्वारिया हैं, उन्होंने अर्जुन को बछड़ा बनाकर गीता रूपी अमृत का दोहन कर अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण जगत को गीतामृत का पान कराया । गीता की महिमा अवर्णनीय है, यह समस्त वेद-उपनिषदों का सार है । गीता को मोह-विभंजनी कहा गया है क्योंकि यह मनुष्य के मोह का समूल विनाश कर देती है । कुरुक्षेत्र के रणांगण में मोहग्रसित अर्जुन के मोह का नाश भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीतामृत का पान करने से ही हुआ । इसलिए कोई भी हो, गृहस्थ अथवा विरक्त, जिसको किसी भी प्रकार का मोह है, गीता के द्वारा उसका विनाश हो जाता है । गीता की प्राप्ति श्रीकृष्ण-कृपा से ही होती है । पद्मपुराण में गीता के प्रत्येक अध्याय के माहात्म्य से सम्बंधित सच्ची कथाओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है कि गीता के केवल पाठ करने मात्र से अनेक चमत्कार (लौकिक व पारलौकिक लाभ) हुए ? यह चमत्कार हर आदमी के साथ हो सकता है । श्रीगीताजी के श्रद्धा-भावपूर्वक पाठ, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, कथन-वर्णन, अनुशीलन आदि करने से सहज आनन्दस्वरूप श्रीभगवान् की प्राप्ति हो जाती है ।

मोहविभंजनी गीता के द्वारा केवल अर्जुन के ही मोह का नाश नहीं हुआ, संसार में जिस किसी ने भी गीता का अध्ययन किया, उसके मोह का नाश हो गया ।

आज भी अधिकांश हिन्दू घरों में मृत्यु के समय लोग मरणासन्न व्यक्ति के कल्याण हेतु गीता पाठ करते हैं ताकि वह यह सोचकर मरे कि आत्मा अच्छेद्य है, अक्लेद्य है, इसकी मृत्यु नहीं होती है, इसको कोई मार नहीं सकता, शस्त्र इसको काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, यह अजर-अमर है । इस विश्वास के साथ जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे भय नहीं लगता और आत्मस्वरूप की ही प्राप्ति होती है । आत्मानुभूति यदि नहीं है परन्तु गीता के श्रवण व पाठ से विचारों में आत्मा-परमात्मा का जो अनुभव होता है, वह अवश्य ही मनुष्य को सद्गति प्रदान करेगा क्योंकि भगवान् ने गीता में यह बात स्वयं कही है –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ (श्रीगीताजी ८/६)

अंतिम समय देह-त्याग करते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, उसी को प्राप्त करता है ।

बहुत से लोग कहते हैं कि हम गीता को समझ नहीं सके, हमें आत्मा का अनुभव नहीं हुआ । आत्मा का अनुभव चाहे हो अथवा न हो किन्तु जैसा कि भगवान् ने उपरोक्त श्लोक में कहा है कि शरीर छोड़ते समय मनुष्य जिस भाव का स्मरण करता है, उसी को प्राप्त करता है । अतः यदि मनुष्य को भगवान् का अनुभव नहीं है परन्तु अंतिम समय उनका स्मरण करता है तो उसे निश्चित ही भगवत्प्राप्ति हो जाएगी । यह श्लोक इस बात का प्रमाण है और स्वयं भगवान् ने कहा है । इसी बात को भगवान् ने आठवें अध्याय में फिर से दोहराया है ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ (श्रीगीताजी ८/७)

सदा मेरा स्मरण करो और जब मन-बुद्धि मुझमें समर्पित हो जायेंगे तो तुम निश्चित ही मुझे प्राप्त कर लोगे ।

इसलिए गीता पढ़ने वाले को मृत्यु से भय नहीं करना चाहिए । भय इस बात का होना चाहिए कि कभी भगवान् की विस्मृति न हो । भगवान् ने यह बात गीता में बार-बार कही है कि मैं सतत् स्मरण से मिलूँगा । भगवान् की प्राप्ति हमें तभी होगी जब सदैव ही उनका स्मरण करेंगे ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(श्रीगीताजी ८/१४)

मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है परन्तु लोग प्रायः ऐसा सोचते हैं कि भगवान् का मिलना बहुत कठिन है किन्तु गीता के अनुसार भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं बल्कि अत्यंत सुलभ है । भगवान् कहते हैं कि जो सतत् मेरा स्मरण करता है, उसे मैं अति शीघ्र मिलता हूँ । जो सदैव भगवत्स्मरण करता है, समझो कि भगवान् उसको मिल गए, इसमें कोई संशय नहीं है । भगवान् ने कई जगह गीता

में इस बात को कहा है । इसलिए हमें संकीर्तनाराधन (नाम-रूप-लीला-गुणगान) व सेवाराधन करते हुए अधिक से अधिक भगवत्स्मरण करना चाहिए, इससे निश्चित ही भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी । यह निश्चित समझो कि जो गीता पढ़कर निरन्तर भगवान् की याद करता है, उसको भगवान् मिल गये । इसलिए गीता के श्लोकों को कंठस्थ कर लेना चाहिए, उनके भावों को हृदयंगम कर लेना चाहिए, जो इसमें आलस्य करता है, वह मृत्यु की ओर जा रहा है । गीता के श्लोकों का अंतिम समय स्मरण बना रहे तो मनुष्य मृत्यु को जीत लेगा क्योंकि गीता मृत्युपाशछेदिनी है, यह अविद्या और मृत्यु का विनाश कर देती है ।

श्रीगीताजी (२/१) में संजय मोहज दयामय अर्जुन की स्थिति का वर्णन करते हैं – **संजय उवाच**

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

अन्वय – **"तं मधुसूदनः इदं वाक्यं उवाच ।"** उस अर्जुन से मधुसूदन ये वाक्य बोले । कैसा अर्जुन था ? **विषीदन्तम्** – जो दुःख कर रहा था । हृदय में मोहजनित वेदना को 'शोक' कहते हैं । **कृपयाविष्टम्** – कृपा से भरा हुआ था, **अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्** (अश्रुपूर्ण+आकुल+एक्षणम्)- आँसुओं से भरे हुए व्याकुल नेत्र । आँसू इतने आ गए थे कि उसकी ईक्षण 'दृष्टि' आँसुओं से आकुल 'भर गई' थी (दिखाई नहीं पड़ रहा था, इतने आँसू निकल रहे थे) । अर्जुन के मन में मोह के कारण कृपा का आवेश है, दो प्रकार की कृपा होती है – एक मोहज और एक ज्ञानज । संसार में हर माँ अपने बेटे पर दया करती है वह मोहज दया है । दया करना भी मोह (अन्धकार) है, जिससे विवेक रूपी प्रकाश चला जाता है । बच्चा मरने पर माँ रोती है, वह मोहज विलाप है, मोह के कारण रोती है । संसार में शोक और मोह दो चीजें हैं जो मनुष्य को विवेकहीन बना देते हैं । संतजन दया करते हैं ज्ञान से (संतों की कृपा से विवेक 'भक्तिमय प्रकाश' मिलता है ।) अर्जुन मोहज दया से भरा हुआ था और आँसुओं के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा था उसको, इतने आँसू थे । बाहर आँसुओं के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा है, भीतर मोह के कारण कुछ समझ में नहीं आ रहा है, बाहर की भी दृष्टि बन्द और भीतर की भी दृष्टि बन्द । ऐसी विषम परिस्थिति सूरदासजी ने भी कही है – **सूर कहा कहै द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो ।** 'हम तो दोनों प्रकार से अन्धे हैं, बाहर की आँख भी गयी, भीतर की भी गयी ।' यहाँ यह दिखाया गया है कि अर्जुन के अन्दर ऐसा मोह था कि इतने अधिक आँसुओं के आने से उसकी बाहर की भी आँख बंद है और मोहज दया से भीतर की भी आँख बंद है, ऐसी स्थिति में वह अन्दर-बाहर से अंधे (द्विविध आँधरे) हैं । 'कृपयाविष्टम्' और 'अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्' अर्जुन के विशेषण हैं । कृपयाविष्टम् – भीतर की आँख फोड़ दिया मोह ने (शोक और मोह के द्वारा अंतःदृष्टि चली गई), अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् - बाहरी आँख भी फूट-सी गयी तो ये वही बात हो गयी- "सूर कहा कहै द्विविध आँधरो" दोनों दृष्टि चली गयी, अर्जुन के अन्तः - बाह्य की ऐसी अवस्था में भगवान् मधुसूदन ने कहा । (**'मधुसूदन'** – श्रीकृष्ण । 'मधु' सारतत्त्व को कहते हैं, फूलों के रस से शहद बनता है जो 'सार' होता है, भौंरा उसी मधु को खाता 'सूदन करता' है तो उसको भी 'मधुसूदन' कहते हैं अथवा समस्त सारतत्त्व के सिद्धान्त को जो खाता है, भोगता है वह मधुसूदन **'कृष्ण'** ।)

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

श्रीभगवान् बोले – कुतः – कहाँ से, त्वा – तुमको, इदं कश्मलम् – ये मोह (मैल), विषम – असमय में (ठीक समय में नहीं), समुपस्थित - उपस्थित हुआ है । ये कैसा मैल है ? **अनार्यजुष्टम्** - आर्य – श्रेष्ठ, अनार्य – हीन लोगों से, जुष्ट – सेवित है, कीर्तिकर – नाम देने वाला, अकीर्तिकरम् – बदनामी देने वाला है, अस्वर्ग्यम् – नरक देने वाला है (स्वर्ग्य – स्वर्ग्य देने वाला, अ- नहीं) अर्थात् ये रास्ता नरक का है, बदनामी का है और नीच पुरुषों से सेवित है । ये 'अकीर्तिकर' दोनों के लिए है, गुरु-चेला दोनों के लिए है; तुम्हारी ही नहीं, हमारी भी बदनामी है । लोग क्या कहेंगे? किसी डरपोक के हिमायती बनकर आये थे कृष्ण और ठीक समय पर उसका गाण्डीव हाथ से गिर गया और हाथ काँपने लग गया । (यह प्रसंग पहले अध्याय में

वर्णित है – अर्जुन ने कहा था कि हमारे अंग ढीले हो गए हैं, हाथ-पाँव, मुख सूख रहा है, शरीर में कंप हो रहा है ।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखच परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

(श्रीगीता १/२८, २९, ३०)

गाण्डीव धनुष हाथ से गिर रहा है, शरीर में दाह हो रहा है, खड़ा नहीं रह सकता हूँ मैं, चक्कर आ रहा है ।) दोनों सेना के लोग देख रहे हैं कि अर्जुन काँप रहा है, रोंगटे खड़े हो गए हैं । ये सब चीजें अकीर्तिकर हैं, बदनामी कराने वाली हैं और नरक देने वाली हैं । क्यों बदनामी है ? ५-६ कारण बताये – (गीता १/२९, ३०) ये सब लक्षण सब लोग देख रहे हैं, जो हमारी बदनामी करायेंगे और तुम्हारी भी करायेंगे । हमारी इसलिए बदनामी होगी कि हम द्वारिकाधीश हैं और संसार की सबसे बड़ी गद्दी है द्वारिका, कभी भी यदुवंशी हारे नहीं, पीछे नहीं हटे; सारा कुल कलंकित हो जाएगा हमारा । ये जो यश है – **यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥** (श्रीगीताजी १८/७८)

'जहाँ कृष्ण व अर्जुन हैं, वहाँ श्री व विजय है ।' यह सुयश नष्ट हो रहा है क्योंकि पहले ही तुम हार गए हो, युद्ध से भाग रहे हो, अकीर्ति तो पहले ही मिल रही है । अकीर्ति से नरक भी होता है । **एक दृष्टान्त है** – दो व्यक्ति मरे और दोनों का जुलूस निकला बड़े धूम-धाम से । तो वहाँ कुछ लोग खड़े थे, उन्होंने पूछा कि कौन इसमें से नरक को गया है ? कौन स्वर्ग को गया है ? तो वहाँ एक वेश्या खड़ी थी, उसने कहा कि इसका फैसला मैं करूँगी । उस वेश्या ने जाकर के जो मनुष्य पहले मरा था, उसके पड़ोसियों से पूछा कि भाई ! ये आदमी मरा है, इसका तुमको दुःख है ? तो लोगों ने कहा कि नहीं, हम बड़े खुश हैं, यह बड़ा दुष्ट था, सबको सताता था, लड़ता-झगड़ता था । इसके बाद उसने जो दूसरा मनुष्य मरा था, उसके पड़ोसियों से पूछा –"अरे भाई ! ये आदमी मरा, इसका तुमको दुःख है ?" वे सब बोले –"बहुत ज्यादा दुःख है, बड़ा भला (बहुत अच्छा) आदमी था ।" यह सुनकर उस वेश्या ने फैसला दिया –"इस जीव की अकीर्ति है, इसलिए यह नरक को गया है । उस जीव का सुयश है, इसलिए वह स्वर्ग को गया है ।" तो **'अस्वर्ग्यम् – अकीर्तिकरम्'** का जोड़ा है । मनुष्य को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि अकीर्ति फैले, उससे अस्वर्ग्य (नरक) की प्राप्ति होती है । हर मनुष्य को पुण्य यश वाला होना चाहिए । रामायण में लिखा है –

"पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥" (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

एक पावन यश होता है । पावन यश भक्तों का होता है क्योंकि वे पुण्य (भक्ति) करते हैं । बिना अघ (पाप) के अज (बदनामी) नहीं होती है । **"लाभु कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२) ऐसा कर्म करना चाहिये कि 'पावन यश' हमारी चर्चा से दूसरे को स्वर्ग मिल जाये । "बड़ा अच्छा आदमी था, बड़ा संयमी, सदाचारी था" ये पावन यश है और जब पावन यश नहीं होता है "अरे बड़ा बदमाश था, अच्छा हुआ मर गया" तो न भी नरक जाएगा तो नरक चला जाएगा । सबसे बड़ी हानि क्या है ? **"हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नर तनु पाई ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

भक्ति के समान कोई लाभ नहीं है । **"अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२) चुगली, निंदा के समान कोई पाप नहीं है । दया करने के समान धर्म कुछ नहीं है । **"भव कि परहिं परमात्मा बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२) भगवान् का भजन करने वाले भव सागर में नहीं जाते । हरि और हरि भक्तों की निंदा करने वाले कभी सुखी नहीं होते । **"राजु कि रहइ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें ॥ काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ॥**

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ११२)

बिना नीति जाने राज नहीं चलता । पराई स्त्री से संपर्क करने वाले को शुभ गति कभी नहीं मिलती है । दुष्ट के साथ

किसी को बुद्धि नहीं मिली आज तक । ये सब प्रमाण हैं । **अकीर्तिकरम्** और **अस्वर्गम्** का परस्पर सम्बन्ध है । पावन यश है तो अपने-आप उसकी शुभ गति होती है, नरक जाता है तो भी उसको स्वर्ग मिल जाता है ।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

देखो, पहले श्लोक में तो भगवान् ने विषाद, जो उदासी या दुःख है इस मैल को बताया । दूसरे श्लोक में मैल आ गयी तो उसका परिणाम नरक या बदनामी (उस मैल का परिणाम) बताया । तीसरे श्लोक में कहा कि मैल का सबसे बड़ा नुकसान क्या है ? क्लैब्यं (अकर्मण्यता) । क्लीव कहते हैं नपुंसक को । नपुंसक में काम करने की शक्ति नहीं होती है । तुम क्लैव्य भाव (कर्महीनता) को प्राप्त हो गए हो, कर्मों को छोड़करके भाग रहे हो । मा - नहीं, नपुंसकता को मत, गमः - जाओ (प्राप्त हो), एतत् – यह, त्वयि - तुममें, न उपपद्यते - ठीक नहीं है, तुम्हारे जैसे महारथी में, हृदय का दुर्बल होना छुद्र नीचता है, नीच दुर्बलता को छोड़कर के खड़े हो जाओ, परन्तप - तुम तो बड़े तपस्वी हो । मैल रहेगी तो कर्म करने में वीरता नहीं आएगी और कर्म वही कर सकता है जिसका हृदय गन्दा नहीं है अर्थात् निर्मल मन में ही कर्म करने की कुशलता होती है ।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुन ने अपनी समस्या रखी –

कथं – कैसे, अहम् – हम, भीष्मम् – भीष्म को, सङ्ख्ये– युद्ध में, **द्रोणं च** - और द्रोणाचार्य हमारे गुरु को, हे मधुसूदन ! कैसे, 'इषुभिः' बाणों से 'प्रतियोत्स्यामः' युद्ध का उत्तर देगें (युद्ध करेगें),योत्स्यामि - युद्ध करना, प्रतियोत्स्यामि - युद्ध के बदले में युद्ध करना । 'अगर वे हमला करते हैं तो भी हम कैसे हमला कर सकते हैं ? क्योंकि 'पूजार्हौ' दोनों पूजा के योग्य हैं, 'अरिसूदन' शत्रुओं को नष्ट करने वाले हे कृष्ण !'

इसमें अर्जुन ने गुरु भक्ति और पितृ भक्ति दिखाई है - 'द्रोणाचार्य' शब्द कहने से गुरु भक्ति और 'भीष्मम्' से पितृश्वरों की भक्ति । भीष्म इनके दादा थे और भीष्म की गोद में ये सब बच्चे खेले हुए थे ।

पाण्डव बचपन में भीष्म की गोद में खेलते थे, अतः भीष्म इनके बाबा लगते थे । इस तरह से भीष्म पांडवों के बाबा लगते थे, वही दादा बोले गए ('दादा' माने बाबा), तो भीष्म को पाण्डव दादा जी कहते थे । इसलिए अर्जुन भगवान् से कह रहे हैं कि मैं अपने (दादा) बाबा को कैसे मारूँ, जिनकी गोद में मैं खेलता था, जिनकी गोद में पला–बढ़ा । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा- ''कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये'' । भीष्म को (अपने पितामह को) मैं कैसे मारूँगा ? द्रोणाचार्य को कैसे मारूँगा, इषु – बाणों से, योत्स्यामि – युद्ध करूँगा, प्रति-लड़ाई के बदले लड़ाई, मैं हमला नहीं करूँगा लेकिन युद्ध में तो ये लोग हमला करेंगे ही । दोनों पूजा के योग्य हैं, तो हे अरिसूदन ! हम कैसे इनसे युद्ध करेंगे ? इस प्रकार अर्जुन ने अपनी समस्या भगवान् के सामने रखी ।

गुरूनहत्वा हि महानुभावा-ञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥

(श्रीगीताजी २/५)

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि मैं गुरुजनों का वध कैसे करूँ, कैसे गुरुजन ? जो महानुभाव हैं, साधारण गुरु नहीं हैं, महापुरुष हैं । 'महानुभावान् गुरून्' ये विशेषण हैं, जिनका एक ही भाव है । इनको अहत्वा – बिना मारे , भैक्ष्य - भिक्षा का अन्न, संसार में भोक्तुं 'खाना' ज्यादा श्रेयस्कर है, भीख माँग के खाना ज्यादा अच्छा है बड़ों को मारने की अपेक्षा क्योंकि ये जो गुरुजन हैं, ये अर्थरूप हैं, कामरूप हैं, इनको मारने का मतलब है कि अर्थ और काम सब नष्ट हो जायेंगे । इहैव – यहाँ पर, गुरुजनों को जो अर्थ, काम रूप हैं, इनको अगर मारते हैं तो जो हमारे भोग हैं, वे खून से प्रदिग्ध (भीजे हुए) माने जायेंगे और हम रुधिरप्रदिग्धान् – खून के भीगे भए (सींचे भए) भोगों को भोगेंगे, जो कि ठीक नहीं है ।

.....

हमारी जितने अंश में सच्चे संत (श्रीगुरुदेव) में शरणागति (भक्ति) होगी, उतने ही अंश में श्रीभगवान् में होगी; ये श्रीइष्ट में समर्पण का सबसे बड़ा पैमाना (मापदण्ड) है ।

.....

गौरवशालिनी 'भारतीय संस्कृति'

भारत की संस्कृति में बड़ों का सम्मान इतना अधिक है कि महाभारत में एक कथा है (महाभारत, युद्धकाण्ड में) कि एकबार युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर को बहुत घायल कर दिया था। जब अर्जुन ने सुना कि बड़े भैया ज्यादा घायल हो गए हैं तो वह उन्हें देखने के लिए लड़ाई के मैदान से चले गए क्योंकि युधिष्ठिर धर्मराज हैं, बड़े भाई हैं। जब अर्जुन उनके पास पहुँचे तो युधिष्ठिर ने पूछा –"क्या तुम कर्ण को मार आये, प्रतिज्ञा पूरी करके आये हो युद्धभूमि से ?" तो अर्जुन ने कहा –"नहीं, मैं आपको देखने आया हूँ।" तो युधिष्ठिर खीज गए और उन्होंने कहा कि धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव को, तुम बिना प्रतिज्ञा पूरी करे आये हो तो इतना सुनते ही अर्जुन ने तलवार निकालना शुरू किया, कृष्ण पास में खड़े थे, कृष्ण ने स्थिति को समझ लिया और बोले – "तलवार पर हाथ क्यों दे रहे हो ? अर्जुन ! ये क्या कर रहे हो ?" अर्जुन बोले – "मेरी प्रतिज्ञा है कि जो हमारे गाण्डीव की बुराई करेगा, मैं उसका सिर काट लूँगा।" तो भगवान् ने कहा कि अरे ! युधिष्ठिर महापुरुष हैं, इनकी हत्या करोगे ? अर्जुन बोले – "यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करूँगा तो आग में जल जाऊँगा, यह मेरा नियम है।" तब भगवान् ने कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा यह है कि जो गाण्डीव की बुराई करेगा, तुम उसका सिर काट दोगे। अगर तुम युधिष्ठिर का सिर काटते हो तो महापुरुष को मारने का महान भक्तापराध तुम्हें लगेगा जो कभी नष्ट नहीं होगा और नहीं सिर काटते हो तो तुम अपने आप को जला दोगे, यह भी ठीक नहीं है। इसलिए तुम इनको 'तू' कह दो। बड़ों को 'तू' कहने से ही उनको मारने के समान अपमान हो जाता है, इस प्रकार तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी मान ली जाएगी। ये एक बड़ी विचित्र घटना थी। इससे पता पड़ता है कि हमारी संस्कृति कितनी पूज्य है ? भगवान् के निर्देशानुसार अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा –"अरे ! तू इस तरह से बोलता है कि बिना कर्ण को मारे मैं आ गया।" जब इतना कहा तो युधिष्ठिर घायल थे, वह उठके चलने लग गये। तो भगवान् ने कहा – "युधिष्ठिर कहाँ जा रहे हो ?" युधिष्ठिर बोले – "अब मै राजपाट छोड़ दूँगा और भिक्षुक बन जाऊँगा, क्या फायदा जब छोटा भाई ही मुझसे तू कहता है, ऐसे जीवन से क्या लाभ ? क्षत्रिय को ऐसा जीवन नहीं बिताना चाहिए, यह क्षात्रधर्म के विरुद्ध है, अतः मैं अब यहाँ से चला जाऊँगा, साधु बन जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा।" भगवान् ने कहा कि तुम भी अर्जुन की तरह ऐसे नासमझ निकले, महाभारत चल रहा है, मैं तुम लोगों का हितैषी बनके आया हूँ किन्तु तुम लोग मेरे सम्मान की नहीं सोचते हो। युधिष्ठिर बोले – "मैं तो ऐसे नहीं जी सकता हूँ कि छोटा भाई मुझसे तू कहे।"

भगवान् ने कहा – "ठीक है, अर्जुन ने 'तू' क्यों कहा है, ये भी तो समझो, तुम्हारा सिर न काटना पड़े, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उसने ऐसा कहा है; ऐसा उसने मेरी आज्ञा से कहा है। इसलिए तुमको ऐसा काम नहीं करना चाहिए। मेरी आज्ञा से कहा है तो इसमें दुःख ही नहीं करना चाहिए।" इस प्रकार भगवान् ने उन दोनों को समझा बुझाकर रोका। अर्जुन भी नहीं मरे और युधिष्ठिर भी नहीं मरे।

हमारी आर्य संस्कृति में अपने से बड़ों का इतना सम्मान रखना पड़ता है, नहीं तो जीवन से कोई लाभ नहीं है। यहाँ इस घटना का इसलिए वर्णन किया गया जिससे कि समझ में आ जाय कि हमारी संस्कृति क्या है ? हमारा धर्म क्या है ? हम लोगों को कैसे अपने बड़ों से व्यवहार करना चाहिए। इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि भीख माँग के खाना अच्छा है, गुरुजनों को मारना ठीक नहीं है, विशेषकर के जो गुरुजन, महानुभाव (महापुरुष) हैं। इसलिए भीख माँग के खाना अच्छा है और उनके खून से भीगा हुआ राज्य भोगना अच्छा नहीं है। अपने से बड़ों को 'तू' भी नहीं कहना चाहिए, बोलने-चालने में भी अपमान नहीं करना चाहिए। आजकल की संतान ये सब नहीं जानती है और वह चाहे जैसा व्यवहार करती है बड़ों से, माता–पिता आदि से, धर्म का कुछ भी विचार नहीं करती है। बड़ों के प्रति शिष्टाचार, आज्ञा पालन आदि की शिक्षा महाभारत से मिलती है।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो- यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम- स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥ (श्रीगीताजी २/६)

न – नहीं, **च** – और, **एतत** – यह , विद्मः – जानना, कतरन्नो गरीयो – कौन-सी बात श्रेष्ठ (बड़ी) है ? यद्वा जयेम – कि हम जीतें या वे लोग हमको जीतें (यदि वा नो जयेयुः), जीतें या हारें, बड़ों से हारना ही अच्छा है और युद्ध में जाएँ तो हारना ठीक नहीं । हम जीतें या हम लोगों को वे जीतें, क्योंकि यानेव हत्वा – जिनको मारने के बाद, न जिजीविषामः – जीने की इच्छा हमारी नहीं है, बड़े सम्बन्धियों की अगर मृत्यु हो तो जीने से क्या फायदा? **'तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः'**– वे ही प्रमुख भीष्म, द्रोण आदि वरिष्ठ लोग जो धृतराष्ट्र के साथी हैं, सामने खड़े हैं मृत्यु के लिए, इनको मारके हम जीना नहीं चाहते हैं और वे सामने खड़े हैं । दादा जी हैं, गुरु जी हैं यदि ये ही मर गए तो हमारे जीने से क्या लाभ? इस श्लोक में अर्जुन की गुरु- भक्ति, पितृ-भक्ति दिखाई पड़ती है, वे गुरुजनों और अपने से पूज्यजनों के बिना जी नहीं सकते । अर्जुन के मन में भीष्म, द्रोण के प्रति इतना अधिक सम्मान था कि उनका यह विचार था कि इनके बिना जीना ही बेकार है जबकि आजकल के लोग तो अपने से वरिष्ठ गुरुजनों और सगे सम्बन्धियों के बिना केवल जीते ही नहीं अपितु मौज मारते हैं, प्रसन्न रहते हैं जो कि आर्य-संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है ।

श्लोक (गीता २/५) से संबंधित महाभारत के कर्णपर्व के कथानक का ऊपर जो वर्णन किया गया है, इसको पढ़ने से गुरु भक्ति, पितृ भक्ति और बड़ों के प्रति भक्ति मिलेगी अन्यथा जीने से कोई लाभ नहीं है । यदि भगवान् बीच में हस्तक्षेप न करते तो युधिष्ठिर की मृत्यु हो गयी होती और अर्जुन भी आत्महत्या कर लेते, इन दोनों को भगवान् ने बचाया और दोनों की प्रतिज्ञा भी पूरी हुई । बड़ों का सम्मान करना ही महाभारत में सिखाया गया है । अर्जुन ने भगवान् से स्पष्ट कह दिया कि अगर इन (गुरुजनों) को हम मार दें, तो खून से भीगा भोजन करेंगे, इसलिए अर्जुन पीछे हटे और बोले कि हम भिक्षा माँग के खा लेंगे । हर लड़के को बड़ों की आज्ञा माननी चाहिए । हठ बड़ों से नहीं करना चाहिए । गीता पढ़कर के जो मनुष्य बड़ों का सम्मान नहीं करता है वह तो महा नालायक है । जब अर्जुन ने भीख माँग के खाना अच्छा समझा और सब कुछ छोड़ दिया, अपने से बड़ों का इतना सम्मान किया तो गीता का प्रारम्भ बड़ों के प्रति सम्मान से होता है, जिसके अन्दर ये गुण नहीं हैं, उसका गीता पढ़ना बेकार है । गीता बड़ों के प्रति भक्ति भी सिखाती है । गीता में यहाँ तक कि अर्जुन ने कहा – हम जीवन भर भीख माँगकर खा लेंगे लेकिन बड़ों से नहीं लड़ेंगे, अर्जुन इतना बड़ा भक्त था । अर्जुन को मोह क्यों हुआ ? ये मोह सामान्य मोह नहीं था, उनका मोह गुरु-भक्ति, पितृ-भक्ति के कारण था कि मैं अपने से बड़े पूज्य गुरुजनों को कैसे मारूँ ? तो मूल कारण था उनकी गुरु-भक्ति या पितृ- भक्ति । अर्जुन का अर्थ क्या होता है ? अर्जुन का अर्थ होता है - सीधा, वह इतने सीधे थे कि इनमें कोई हठ आदि नहीं था । ये बात गीता से सीखनी चाहिए, नहीं तो गीता पढ़ना बेकार है । बड़ों का सम्मान, बड़ों से बोलना-चालना, उठना–बैठना ये सब सम्मानपूर्वक रहे, बस यही गीता है ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ (श्रीगीताजी २/७)

कार्पण्य – कृपणता, कृपणता क्या चीज है ? कृपणता कहते हैं कंजूसी को, कंजूसी क्या है ? भगवान् ने कहा है – "कृपणाः फलहेतवः" (गीता २/४९) फलों की इच्छा करना ही कृपणता है । जिसको जितने फल की इच्छा होती है, उतना ही कंजूस बन जाता है । इच्छा कृपण बना देती है । यहाँ पर अर्जुन के लिए कार्पण्य से तात्पर्य है युद्ध जीतना, राज्य चाहना । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि हम लोगों में कार्पण्य दोष आ गया है, फल की इच्छाओं ने हमको कृपण बना दिया, तभी तो हम लड़ रहे हैं । फल की इच्छा आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है । इसलिए कार्पण्य दोष का अर्थ है इच्छा । किसी में भी, चाहे वह बुड्ढा, जवान, स्त्री, पुत्र, माता–पिता आदि ही क्यों न हों, यदि कृपणता है तो गिड़गिड़ाना पड़ेगा । माँगते समय आदमी छोटा बन जाता है, कृपण बन जाता है । कृपण के भाव को 'कार्पण्य' कहते हैं । इसीलिए अर्जुन ने कहा कि कार्पण्य दोष से मेरा स्वभाव उपहत अर्थात् नष्ट हो गया है । 'कृपणता' स्वभाव को नष्ट कर देती है ।

कामना ही कृपणता

यदि हम किसी के पास माँगने गये तो अपना स्वभाव माँगना नहीं है लेकिन कार्पण्य-दोष वहाँ ले गया। अर्जुन कहते हैं कि हमारा जो वास्तविक स्वभाव है कि हम क्षत्रिय हैं, हमको क्षात्रधर्म में उदार होना चाहिए; ब्राह्मण, गुरु से नहीं लड़ना चाहिए लेकिन कार्पण्य दोष के कारण हमारा स्वभाव नष्ट हो गया। दूसरी बात ये है कि 'धर्मसम्मूढचेताः' मेरे चित्त में सम्मूढता - मोह आ गया। एक तो स्वभाव नष्ट हुआ मेरा, दूसरा चित्त में सम्मोह पैदा हो गया। सम्मोह क्यों पैदा हुआ ? धर्म के कारण से। धर्म मोह पैदा करता है। धर्म क्या है ? ये हमारे रिश्तेदार हैं, नातेदार हैं, इनको कैसे मारें हम ? धर्म सामने आके खड़ा हो गया कि ये गुरु हैं, इनसे नहीं लड़ो, ये बाबा जी हैं, दादा हैं इनसे नहीं लड़ो, ये चाचा हैं, ये ताऊ हैं, सब परिवार खड़ा है, जीजा हैं, साले हैं, इन परिवार वालों को मारना ठीक नहीं है, इस प्रकार धर्म से सम्मूढ चित्त हो गया, चित्त में मोह पैदा हो गया। एक तो स्वभाव नष्ट हुआ, दूसरा धर्म ने मोह पैदा कर दिया।अर्जुन ने भगवान् से कहा कि ऐसी स्थिति में 'यच्छ्रेयः स्यात्' 'छ्रेय' माने जो निश्चित कल्याण का रास्ता है, 'तन्मे ब्रूहि' वह मुझसे आप बताइये, क्योंकि 'शिष्यस्तेऽहं' मैं आपका शिष्य हूँ, शाधि – मुझ पर शासन करो, त्वां प्रपन्नम् – मैं आपकी शरण में आया हूँ। शिष्य किसको कहते हैं ? किसी साधु से मंत्र ले लिया और उससे कहा कि तुम हमारे गुरु हो, हम तुम्हारे चेला हैं, इसे शिष्य नहीं कहते हैं। "शासितुं योग्यःशिष्यः" जो हमेशा शासन के योग्य है, जिस पर शासन किया जाय और जो शासन माने। गुरु जी कह रहे हैं – बेटा ! त्याग करो, जो शासन नहीं मान रहा है, वह शिष्य कहाँ है ? अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ। शाधि – आप मेरे ऊपर शासन करो। शासन कैसे करें तो अर्जुन भगवान् से बोले कि मैं आपकी शरण में हूँ। जो शरण में होता है वही शासन मानता है। शरण में जो नहीं है वह शासन क्यों मानेगा ? एक रास्ते चलते आदमी से कहो कि ऐसा करो तो वह नहीं मानेगा। इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं प्रपन्न हूँ, तुम्हारी शरण में हूँ, इसलिए मेरे ऊपर शासन करो।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् । अवाप्य
भूमावसपत्नमृद्धं-राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

(श्रीगीताजी २/८)

अर्जुन बोले – ये सारा राज्य हम जीत भी लें तो भी मैं नहीं देखता हूँ (न हि प्रपश्यामि), मम – मेरे, यच्छोक – जो शोक पैदा हुआ है, उच्छोषणमिन्द्रियाणाम् – इन्द्रियों को सुखा रहा है, उस शोक को जो अपनुद्याद् – दूर कर दे, हम राज्य पा जायें तो भी हमारा शोक दूर नहीं होगा, अवाप्य – प्राप्त करके, भूमौ – पृथ्वी को, असपत्नम् – शत्रु रहित निष्कंटक राज्य, ऋद्ध – समृद्ध, खूब सम्पन्न धनधान्य से, ये पृथ्वी का राज्य मिल जाय, पृथ्वी तो छोटी चीज है, सुराणाम् –देवताओं का भी, आधिपत्य – कोई इन्द्र बना दे, देवताओं के भी राजा बन जायें तो भी हमारा दुःख दूर नहीं होगा इन गुरुजनों के मारने से। इसलिए जो कल्याणकारी बात है, वह आप निश्चित रूप से मुझे बताइए कि मुझे क्या करना चाहिए ? ये सब सिद्धान्त की बातें यदि विचार करोगे तो कार्पण्य- दोष जीवन भर नहीं आएगा और धर्म से जो मोह पैदा होता है, वह भी नहीं होगा। धर्म भी मोह पैदा कर देता है। इन्द्र को भी यदि फल की इच्छा है तो वह भी कृपण बन जाता है, जैसे - एकबार वह अहिल्या के रूप पर मोहित हुआ जबकि अहिल्या ऋषि गौतम की पत्नी थी, वह वेष बदलकर उसको भोगने के लिए पहुँच गया, गौतम ऋषि का वेष बनाया और चन्द्रमा को मुर्गा बनाकर सिखा दिया तो वह नकली मुर्गा आधी रात को ही बोल पड़ा। गौतम ऋषि मुर्गे की आवाज सुनकर आधी रात को ब्रह्ममुहूर्त समझकर नदी में नहाने के लिए चले गए। पीछे से अहिल्या के पास ऋषि का वेष बनाकर इंद्र पहुँच गया और बोला –"दरवाजा खोलो।" अहिल्या ने झोपड़ी का द्वार खोल दिया, उसने देखा गौतम ऋषि खड़े हैं, इन्द्र ने गौतम के वेष में अहिल्या के साथ सम्पर्क किया, उधर असली गौतम ऋषि स्नान करके लौट रहे थे और नकली गौतम (इन्द्र) झोपड़ी से बाहर निकल रहे थे। गौतमजी ने देखा कि ये दूसरा गौतम कहाँ से आ गया ? मेरी तरह इसकी दाढ़ी और शरीर है। ध्यान से देखा तो पता पड़ा कि

यह तो इन्द्र है, गौतम बनके आया है । उन्होंने क्रोध में भरकर इन्द्र को शाप दे दिया और कहा कि स्त्री की योनि चर्मखण्ड (चमड़े का टुकड़ा) ही तो है, इसके पीछे तू नकली गौतम बनकर पाप करने के लिए चला आया तो जा, तेरे सारे शरीर में एक हजार योनियाँ हो जाएँगी । गौतम ऋषि के शाप से इन्द्र के मुँह, गाल प्रत्येक अंग पर योनि ही योनि के चिन्ह बन गये । बड़ा खराब रूप बन गया । शरीर पर छोटा-सा गड्ढा भी हो जाता है तो बुरा लगता है और योनि तो बहुत बुरा और बड़ा गड्ढा है । इन्द्र का मुँह, नाक, कान सब योनिमय हो गया तो वे गौतम ऋषि के चरणों में गिर पड़े और बोले –"अब यह चेहरा मैं कहाँ दिखाऊँ, मुझ पर कृपा करो महाराज ।" ऋषि ने कहा –"ये दंड तो तुझे भोगना ही पड़ेगा, तू देवराज होकर के कृपण बन गया ।" अतः किसी चीज की इच्छा होती है तो आदमी कृपण बन जाता है, जैसे – सांसारिक भिखारी लोगों के सामने गिड़गिड़ाता है - ए सेठ ! कुछ तो दे दे, दो रुपये साग के लिए दे दे । यह क्या है ? मनुष्य कृपण बन जाता है क्योंकि फलहेतु (इच्छा) उसको वैसा ही बना देता है । इतना बड़ा देवताओं का राजा इन्द्र भी इच्छा के कारण कृपण बन गया, उसी बात को अर्जुन कह रहे हैं कि देवताओं का आधिपत्य भी मिल जाय फिर भी ये कार्पण्यदोष नहीं जा सकता, इन्द्र बनने पर भी नहीं जाएगा, इसलिए मुझको आप सच्चा मार्ग बताइये कि मैं क्या करूँ ? इच्छा के आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है - चाहे बेटा है, चाहे स्त्री है, इच्छा मनुष्य को कृपण बना देती है । जिसके अन्दर फल की इच्छा है, वह सदा कृपण बना रहता है, उसकी आँख, नाक, कान सब झुकी हुई, भिखारी की तरह दीन होती है; ये सब कृपणता के लक्षण हैं । जब कुछ नहीं चाहिए तो कृपणता नहीं आती है । **"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह । जिनको कछु न चाहिए, वे शाहन के शाह ॥"** ये नियम है, निष्काम व्यक्ति कभी कृपण नहीं बनते हैं, उनकी नजर कभी नहीं झुकती है और जिसके अन्दर चाह (इच्छा) है, वह तो अपने बेटे से भी झुक जाएगा और कहेगा कि तू तो मेरा बेटा है, मुझे यह दे दे, वह दे दे । स्त्री से भी झुक जाएगा, गुलाम बन जाएगा और परिवार में उसका शासन नहीं चलेगा क्योंकि कृपण बन गया । जब तुम अपनी स्त्री से कुछ नहीं माँगोगे, कुछ नहीं चाहोगे तो वह अपने आप दबेगी, अपने आप कहेगी - शासन करिए मेरे ऊपर, मैं तुम्हारी शरण में हूँ और तुम्हारे अन्दर इच्छा आ जाएगी तो वह शासन करेगी तुम पर और तुम्हारे अन्दर इच्छा नहीं है तो तुम शासन करोगे । शिष्य वही है जो शासन मानता है, केवल मंत्र लेने वाला शिष्य नहीं होता । **"शासितुं योग्यः शिष्यः"** शास् धातु से 'शिष्य' शब्द बना है । 'शिष्य' शरण में आता है तो शिष्य है, शरण किसी दूसरे की है तो शिष्य नहीं है । दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो । विमुख व्यक्ति दूसरे का दास है, दूसरे से इच्छा करता है । ये जीवन भर याद रखना चाहिए कि कृपण कौन है ? "कृपणाः फलहेतवः" (गीता २/४९) फल की इच्छा आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है । इच्छा मनुष्य को कृपण बना देती है, मँगता (भिखारी) बना देती है । इसलिए कृपणता अपने अन्दर नहीं आवे तो सारे जीवन हम शाहनशाह बने रहेंगे ।

संजय उवाच –

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

गुडाकेश- अर्जुन, गुडाका कहते हैं नींद को, ईश – स्वामी, नींद को जीत लिया जिन्होंने, अर्जुन को सोने की जरूरत नहीं पड़ती थी । जैसे हम लोग नहीं सोयेंगे तो ब्लड प्रेशर (रक्तचाप) बढ़ जाएगा, ऐसी बीमारी नहीं थी उनको, वह गुडाकेश थे । गुडाका अर्थात् नींद के स्वामी थे, वह नहीं सोवें तो भी उनको कुछ रोग या कोई परेशानी नहीं होती थी । गुडाकेश – अर्जुन ने, हृषीकेश भगवान् से, हृषीक – इन्द्रियाँ, ईश – इन्द्रियों के स्वामी भगवान् से, एवम् – ऐसा कहने के बाद, परंतप - परम तपस्वी (अर्जुन), न योत्स्य – मैं युद्ध नहीं करूँगा, 'गोविन्दम्' – गोविन्द से, उक्त्वा – कहकर के, तूष्णीं बभूव ह – चुप हो गए । अर्जुन ने निर्णय दे दिया कि मैं युद्ध नहीं करूँगा ।

.....

निष्कामता (निष्किंचनता) एक ऐसा दिव्य गुण है, जिसके कारण से स्वयं श्रीभगवान् वश में (आधीन) होकर वास्तविक बोध दे देते हैं ।

.....

सच्ची शान्ति 'प्रसन्नता'

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

कायदे से अर्जुन के कायरता से भरे हुए वचनों को सुनकर भगवान् को क्रोध करना चाहिए था क्योंकि वही द्वारिकाधीश को युद्ध के लिए बुला के लाया था और अब कुरुक्षेत्र की रणभूमि में युद्ध के प्रारम्भ होने पर वह युद्ध करने को स्पष्ट मना कर रहा है तो इसमें उनका भी तो अपमान है, लेकिन भगवान् ने ये शिक्षा दी कि ऐसी स्थिति में भी क्रोध नहीं आना चाहिए, खीज नहीं होनी चाहिए । यहाँ श्रीकृष्ण के लिए शब्द प्रयोग किया गया - 'प्रहसन्निव' अर्थात् वह बहुत हँसे, अपने से छोटे की गलती पर हँस गए, ऐसे दयालु हैं । प्रायः जब छोटा व्यक्ति बात नहीं मानता है तो बड़ा आदमी नाराज हो जाता है, श्रीभगवान् ने शिक्षा दी कि ऐसा करना गलत है, बड़े का मतलब यह नहीं है कि तुम बड़प्पन का अहम् रखो या गुस्सा करो, बल्कि प्रहसन् – भगवान् बहुत ज्यादा हँसे, हृषीकेश– भगवान्, तम् – उनसे, इदं वचः उवाच – ये बात बोले, सेनयोरुभयोर्मध्ये - दोनों सेनाओं के बीच में । भगवान् को गुस्सा करना था लेकिन वह हँस गए, इस प्रकार भगवान् ने शिक्षा दिया कि क्रोध के मौके पर हँसो, दुःख के मौके पर हँसो, इस तरह से तुम उसको जीत लो । हृषीकेश – कृष्ण, बड़े जोर से हँसे दोनों सेनाओं के बीच में, इसका एक कारण है कि जब शत्रु पक्ष देखता है कि हमारा विरोधी उदास है तो उसका उत्साह बढ़ जाता है और जब शत्रु पक्ष देखता है कि इनको तो कुछ भी उदासी नहीं है, हँस रहे हैं तो उसका मनोबल गिर जाता है । यह नीति, धर्म और ज्ञान की दृष्टि से भी बढ़िया है कि क्रोध के मौके पर हँसो, दुःख के मौके पर हँसो, ऐसा भगवान् ने स्वयं करके दिखाया है । यह एक बहुत बड़ा गुण है । कोई आदमी गाली दे रहा है तो हँसो, ऐसा ही महापुरुषों ने किया है, जैसे एक उदाहरण है कि एक बार गौतम बुद्ध प्रचार करते हुए एक गाँव में गए, वहाँ के लोग उनसे चिढ़ते थे । एक दुष्ट व्यक्ति ने उनके सामने आकर के गाली देना शुरू किया - ढोंगी है, पाखण्डी है, इस प्रकार उनके विरुद्ध अनेकों अपशब्द कहता गया किन्तु वह चुपचाप सुनते रहे, तब तो उसका क्रोध और अधिक बढ़ गया और वह क्रोधावेश में बोला – "अरे, बड़ा बेशर्म है, बोलता भी नहीं है, चुप है ।" तब भी गौतम बुद्ध कुछ नहीं बोले । अन्त में अत्यधिक क्रोधवश वह दुष्ट व्यक्ति बोला – "नहीं बोलता है, भाग जा ।" तब बुद्ध भगवान् बोले कि महाशय ! मैं आपके घर पर आऊँ और आप मुझको बहुत-सी चीजें भेंट दें और मैं नहीं लूँ तो वे चीजें कहाँ जाएँगीं ?

तो वह (दुष्ट व्यक्ति) बोला – "अरे मूर्ख, वे चीजें वहीं की वहीं रह जाएँगीं ।" गौतम बुद्ध बोले –"ठीक है, आपने मुझे इतनी गालियाँ दीं और मैंने एक भी गाली नहीं ग्रहण की अर्थात् सारी गालियाँ आपके पास ही रह गईं ।" तब वह दुष्ट आदमी शर्मिन्दा हो गया और सारे लोग हँसने लग गए । भगवान् बुद्ध की विजय हो गई, शान्ति की ऐसी ही विजय होती है । ऐसा महापुरुषों ने किया है, वही भगवान् कृष्ण करके दिखा रहे हैं । ऐसा अगर हम लोग भी करने लग जाएँ तो बड़ी ऊँची विजय हो जाती है ।प्रहसन – बहुत जोर से हँसना, दोनों (कौरव-पाण्डव) सुनने लग गए , 'हा ऽ हा ऽ ऽ हा ऽ ऽ ऽ हा ऽ ऽ ऽ ऽ' ऐसे जोर से कृष्ण हँसे दोनों सेनाओं के बीच में, कौरव भी सुन रहे थे, पाण्डव भी सुन रहे थे कि अरे, ये तो कृष्ण हँस रहे हैं । कृष्ण हँसते हुए अर्जुन (जो दुःखी हो रहा था) से बोले । ये सब चीजें सीख लो, कहाँ हँसना है ? कोई गाली दे रहा है, क्रोध के समय या दुःख के समय (तो) हँसना चाहिए, ये चीज तुमको महापुरुष बना देगी । (यद्यपि वीर रस और रौद्र रस का आपस में मेलजोल है । जब योद्धा लड़ता है तो रुद्र रूप में आ जाता है, उसकी आँख-नाक चढ़ जाती है, भयानक आकृति बन जाती है क्योंकि वीर रस और रौद्र रस का मेल है किन्तु अर्जुन महाभारत में अधिकतर मुस्कुराकर लड़ते थे । उत्तम योद्धा मुस्कुराकर खेल समझकर लड़ते हैं । लड़ते समय भी श्यामसुन्दर मधुर बने रहते हैं क्योंकि ये मधुर हैं, इनका सब कुछ मधुर है । इस भयंकर वातावरण में भी वे मुस्कुरा रहे थे क्योंकि वे रसमय प्रभु हैं । एक बात और है, श्यामसुन्दर ने ब्रज में कभी हथियार नहीं उठाया, जिससे कि मधुरता कहीं बिगड़ न जाए । जितने भी असुर ब्रज में उन्होंने मारे तो पूतना को स्तन पान करके मार दिया, किसी असुर को टांग पकड़कर पछाड़ दिया और अभी कालिय को नाच-नाचकर पछाड़ देंगे । इसीलिए यह बड़ी विचित्र बात हुई कि कालियनाग को देखकर श्यामसुन्दर मुस्कुरा रहे थे । कालियनाग ने देखा कि यह बालक मुस्कुरा रहा है और निर्भय खेल रहा है तथा यमुनाजी से कमल लेकर घुमा रहा है, यह उनकी एक अदा है ।)

श्रीसेवाराधना ही दिव्य तप

ऋषभदेवजी ने कहा –

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वम्
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

(श्रीभागवतजी - ५/५/१)

भगवान् की वाणी में अमृत टपक रहा है । ऐसे ही बोलना चाहिए । कोई राजा हो जाए तब भी ऐसे ही बोलना चाहिए । भगवान् ने कहा – हे मेरे पुत्रो !

भगवान् की वाणी में प्रजा के प्रति वात्सल्य भरा है । ऐसा नहीं कि प्रजा है तो उससे वैर करें । सबको अपना बेटा मानकर भगवान् बोल रहे हैं । महापुरुष की वाणी से ही पता चल जाता है कि यह महापुरुष है । स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका में विश्व धर्म सम्मलेन में भाग लेने गये थे तो वहाँ जितने भी धार्मिक नेता भाषण देने के लिए आते तो सम्बोधन में वे सभी यही कहते –

लेडीज एंड जेंटलमेन (ladies and gentle men) अर्थात् महिलाओं और भद्र पुरुषो !

किन्तु जब स्वामी विवेकानन्द अपना भाषण देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा – माई डियर ब्रदर्स एंड सिस्टर्स (my dear brothers and sisters) मेरे प्यारे भाइयो और बहनो !

इतना सुनते ही उस बड़े हॉल में बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं । सब लोग आपस में कहने लगे कि यह कौन है, फ़रिश्ता है या ईश्वर का कोई दूत है । सभी लोग स्वामी जी की वाणी सुनकर मन्त्र मुग्ध से हो गये । इसलिए सबसे कैसे बोलना चाहिए, यह भगवान् स्वयं अपने आचरण के द्वारा सिखाते हैं । गीता में भी भगवान् कृष्ण अर्जुन को बार-बार मधुर वाणी से कहते हैं – हे महाबाहो ! हे निष्पाप !! हे अनघ !!! कैसे-कैसे शब्द भगवान् ने अर्जुन के लिए प्रयुक्त किये हैं ।

कुछ माता-पिता ऐसे हैं जो अपने बच्चों तक को आदर सूचक शब्द 'जी' लगाकर बोलते हैं । इन आचरणों का प्रभाव पड़ता है, तभी तो बच्चा मधुर व्यवहार करना सीखता है । बच्चा मधुर व्यवहार तभी सीखेगा, जब माता-पिता स्वयं ऐसा करके दिखायेंगे । जब माँ-बाप स्वयं ही आपस में लड़ते रहेंगे तो बच्चा तो अपने आप ही असुर बन जाएगा ।

भगवान् ऋषभदेवजी कहते हैं – 'हे मेरे पुत्रो ! यह मनुष्य शरीर इसलिए नहीं मिला है कि हम लोग दुःखमय भोगों को भोगें । इन भोगों को तो सुअर भी भोगता है । सुअर मल खाता है । मैथुन में स्त्री-पुरुष एक दूसरे के मल-मूत्र से भरे शरीर को भोगते हैं तो मल-मूत्र ही तो खाते हैं । यदि मनुष्य दिन-रात मल-मूत्र के भोगों को भोगता है तो वह सुअर ही तो है । चाहे कितना ही बढ़िया कोई वस्त्र पहन ले किन्तु उसका लक्ष्य यदि दिन-रात मल-मूत्र का मैथुनी भोग भोगना ही है तो वह मनुष्य वास्तव में सुअर ही है । भगवान् कहते हैं कि तुम लोगों को मनुष्य शरीर इसलिए नहीं दिया गया है कि तुम सुअर की तरह भोग भोगो । यह शरीर इसलिए मिला है कि दिव्य तप करो, जिससे तुम्हारा अन्तःकरण स्वच्छ हो जाए और फिर भगवत्प्रेम की प्राप्ति हो । भगवत्प्रेम कैसे मिलेगा ? इसके लिए पहला काम तो यह है कि महत्सेवा करो, महापुरुषों के पास जाओ ।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

(श्रीभागवतजी - ५/५/२)

महापुरुषों से दूर नहीं भागो, उनकी सेवा करो । स्त्री नरक का द्वार है क्योंकि बड़ी जल्दी उसमें आसक्ति हो जाती है । स्त्री के लिए पुरुष अपने माता-पिता को ऐसे छोड़ देता है मानो तिनका हों । स्त्रियों के संगियों का भी संग छोड़ो ।

अब प्रश्न यह है कि महात्मा कौन हैं ? लाल कपड़ा वाले या सफ़ेद कपड़े वाले क्योंकि महात्मा भी तो कई प्रकार के हैं । महात्मा का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि वे समान चित्त के होते हैं तथा शांत रहते हैं और जिनको क्रोध नहीं आता है । इसीलिए तो वे महात्मा हैं । महात्मा बनकर कोई लड़े तो किस बात का महात्मा है । ऋषभदेवजी लक्षण बता रहे हैं कि महात्मा सबके सुहृद होते हैं तथा मुझमें और मेरे भक्तों में सौहार्द रखते हैं । महात्मा से मतलब यहाँ किसी वेषधारी से नहीं है, गृहस्थ में भी मनुष्य महात्मा हो सकता है, यदि वह आसक्ति नहीं रखता है ।

भगवान् ऋषभ आगे कहते हैं कि संसार के लोग मस्त हो रहे हैं, मतवाले हो रहे हैं क्योंकि **'इन्द्रियप्रीतय आपृणोति'** – ये दिन-रात अपनी इन्द्रियों की प्रीति में लगे रहते हैं। सबेरे से शाम तक अपने घरों में लोग इन्द्रिय भोग की ही तैयारी करते रहते हैं। सबेरे से उठकर लोग चाय-नाश्ता करते हैं। सोकर उठते हैं तो बिस्तर पर ही चाय पीने लगते हैं, फिर कई तरह का नमकीन बनता है, दोपहर के भोजन में चार तरह के साग, चटनी और दालें बनायी जाती हैं, फिर शाम को लोग चाय पीते हैं। रात को फिर से भोजन के लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाते हैं। इस तरह सबेरे से रात तक लोग अपने पेट का गड्ढा भरने में ही लगे रहते हैं और यह गड्ढा कभी भरता नहीं है, सदा खाली ही बना रहता है। आजकल लोग दिन भर टेलीविजन देखते रहते हैं। ऐसी-ऐसी विनाश की चीजें बन गयी हैं कि मनुष्य भजन कैसे करेगा ? बड़े-बड़े भक्तों के घरों में भी टेलीविजन आ गया है, दिन-रात उनके बच्चे उसी को देखने में लगे रहते हैं। दुनिया में इन्द्रिय प्रीति के लिए, विनाश के लिए ही प्रतिदिन नये-नये आविष्कार किये जा रहे हैं। प्राचीन काल में लोग दिन-रात भगवान् की आराधना इसलिए कर लेते थे क्योंकि तब इन्द्रिय भोग के लिए विनाशकारी चीजों का निर्माण नहीं किया जाता था। अब आजकल के लोग पतनकारी चीजों के कारण भजन कैसे कर पायेंगे ?

ऋषभ भगवान् बोले – **'न साधु मन्ये'** – मनुष्य इन्द्रिय प्रीति के लिए जो कार्य करता है, उसे मैं ठीक नहीं समझता हूँ क्योंकि इन चीजों को भोगने से शरीर क्लेशद बन जाता है और मृत्यु के बाद भी अगले जन्मों में उसे कष्टदायक योनियाँ प्राप्त होती हैं। जब तक मनुष्य आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं करता है तब तक उसका मन उसे कर्मों में फँसा-फँसा कर मार डालता है। यह मन मनुष्य को नचाता ही रहता है। जब तक मुझ वासुदेव में प्रेम नहीं होगा तब तक वह देह बन्धन से छूट नहीं सकता है। इन्द्रियों की जितनी भी चेष्टायें हैं, इन्हें बेकार समझो। कोई कहे कि हम बड़े भक्त हैं और दिन-रात वह इन्द्रिय चेष्टाओं में लगा है तो यह गलत बात है, वह भक्त नहीं है। **'यदा न पश्यत्ययथा गुणेहाम्'** – 'गुणेहा' अर्थात् इन्द्रिय चेष्टाओं को बिलकुल अयथा (बेकार) समझना चाहिए। इन्द्रिय तृप्ति के कारण ही मैथुन भाव को प्राप्त होकर सारे जीवन मूर्ख मनुष्य आत्मस्वरूप को भूला रहता है। जीव कितना स्वतन्त्र है किन्तु एक स्त्री के बन्धन के कारण (शहरों में) एक ही कोठरी में सारा जीवन बिता देता है, जैसे एक चूहा चुहिया की आसक्ति के कारण सारा जीवन एक छोटे से बिल में बिता देता है। स्त्री ऐसी शक्ति है कि उसके कारण पुरुष का सारा जीवन एक ही कोठरी में बीत जाता है, केवल उतने ही क्षेत्र को अपना मानकर। यह मिथुनी भाव हृदय की बहुत बड़ी गाँठ है। स्त्री के लिए पुरुष, पुरुष के लिए स्त्री, दोनों ही एक दूसरे के बन्धन के कारण हैं। यहाँ स्त्री शरीर की निन्दा नहीं की गयी है, पुरुष शरीर की निन्दा नहीं है। ऋषभ भगवान् कहते हैं कि इन दोनों का जो मिथुन भाव है, मैथुनी आसक्ति है, वह इनके लिए बन्धन का कारण है, अन्यथा स्त्री तो देवी है किन्तु **'पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतम् तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।'** (श्रीभागवतजी - ५/५/८)

स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री – इन दोनों की जो परस्पर मैथुनी आसक्ति है, यह उनके हृदय की सबसे बड़ी गाँठ है। यदि कोई पुरुष इस गाँठ से छूटना चाहता है तो स्त्री छूटने नहीं देती। कितने ही पुरुष जो महापुरुषों के सत्संग के प्रभाव से उनके आश्रय में भक्तिमय जीवन बिता रहे थे, उनकी पत्नियाँ उन्हें वापस घर में ले गयीं, उनका सत्संग सदा के लिए छुड़ा दिया। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री चाहती है कि मैं सदा श्रीकृष्ण स्मरण करूँ तो उसका पति साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति अपनाकर उसे भक्ति से दूर कर देता है। इस तरह दोनों ही एक दूसरे के लिए बन्धन की गांठ हैं। इसीलिए मनुष्य दिन-रात अयमहं ममेति - मैं-मेरापन के भाव से ग्रसित रहता है और इसे समझ नहीं पाता है। पुरुष सोचता है कि मैं तो धर्म कर रहा हूँ, अपने स्त्री-पुत्र का पालन कर रहा हूँ जबकि यह धोखा है। हम लोग आसक्ति के वशीभूत होकर अपने परिवार का पालन करते हैं। आसक्ति रहित कर्म एक अलग बात है। अपनी आसक्ति को मनुष्य समझ नहीं पाता है। यदि अपने परिवार का पालन भी करते हो तो आसक्ति रहित होकर करो किन्तु मनुष्य की आसक्ति नहीं छूटती है। मनुष्य अपनी आसक्ति के बारे में सोचता है कि हम धर्म कर रहे हैं। अपनी कमी को समझना चाहिये। यदि स्त्री-पुत्र का पालन भी करते हो तो उन्हें ईश्वर रूप समझकर पालन करो, इससे तुम्हारी मिथुनी भाव की आसक्ति

चली जाएगी । हर व्यक्ति अपनी आसक्ति को धर्म समझे बैठा है और इसी धोखे में अपने को ऊँचा समझता है जबकि वह बन्धन में पड़ा हुआ है । मिथुनी भाव की हृदय में जो गाँठ पड़ गयी है, उसी के कारण घर, खेत, पुत्र, धन और स्वजन आदि को मनुष्य अपना समझता है, उनके प्रति मेरेपन का भाव हो जाता है । मेरापन हो जाने के कारण बेटा बीमार हो जाये तो रोता है, बेटे की नौकरी लग जाये तो प्रसन्न होता है । इस सम्बन्ध में सूरदासजी ने बड़ा सुन्दर भाव गाया है –

जगत में जीवत ही को नातो ।
मैं मेरी कबहुँ नहिं कीजै,
कीजै भक्त सुहातो ।

यदि कोई कहे कि मैं तो गृहस्थ हूँ, अतः अपने परिवार का जो पालन कर रहा हूँ, वह तो धर्म है, मैं तो धर्म के अनुसार ठीक ही कर रहा हूँ । उन्हें भगवत्स्वरूप समझकर उनका पालन कर रहा हूँ तो सूरदास जी कहते हैं कि यह तुम्हारी बातें ही बातें हैं । तुम अपने परिवार को भगवत्स्वरूप नहीं समझ रहे हो क्योंकि सूरदास जी आगे कहते हैं –

'सुख सीरो दुःख तातो'

तुमको सुख तो ठण्डा लगता है और दुःख गरम लगता है तब फिर तुम भक्त कहाँ हो ? भक्त होते तो तुमको सुख और दुःख समान लगते, इसलिए तुम धोखे में पड़े हुए हो, सोचते हो कि मैं धर्म कर रहा हूँ, धर्म नहीं कर रहे, तुम तो अपनी आसक्ति का पोषण कर रहे हो ।

सूरदास कछु थिर न रहैगो,
जो आयो सो जातो ।

सूरदासजी कहते हैं कि जो चीज आई है, वह तो चली जाएगी । तुम कौन से धोखे में हो, अपनी करनी को समझो । अपने में विचार करो कि तुम्हारे अन्दर कितनी कमी है । यदि तुम सबको भगवत्स्वरूप समझते तो दुःख में रोते और सुख में हँसते नहीं ।

इसीलिए भगवान् ऋषभ देव जी कहते हैं कि मनुष्य के अन्दर मिथुनी भाव की ग्रन्थि पड़ जाने के कारण वह मैं-मेरा करता रहता है । जब उसके हृदय की यह गाँठ ढीली पड़ेगी तब मनुष्य मुक्त होगा । जब तक यह गाँठ पड़ी हुई है, मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता चाहे वह साधु बने, विरक्त बने अथवा कुछ भी बन जाये । अब प्रश्न यह उठता है कि यह गाँठ ढीली कैसे पड़ेगी ? मिथुनी भाव की जो यह गाँठ है कि यह मेरी पत्नी है, मेरा बेटा है, मेरा मकान, धन आदि है तो इसको दूर करने का उपाय ऋषभ भगवान् बताते हैं कि सच्चे गुरु का भक्तिपूर्वक अनुगमन किया जाये । अब ऐसा नहीं समझना चाहिये कि किसी साधु से कंठी ले आये और गुरु बना लिया, नहीं । वस्तुतः गुरु में ऐसी योग्यता होनी चाहिए कि उसके अन्दर आसक्ति को छुड़ाने की शक्ति हो और जो स्वयं भी आसक्ति से छूटा हुआ हो । गुरु यदि स्वयं ही आशा कर रहा है कि मेरा शिष्य आएगा तो कुछ धन भेंट करेगा तो वह तुम्हारी आसक्ति क्या छुड़ाएगा ? इसलिए ऋषभ देव जी कह रहे हैं कि केवल ऐसा नहीं करना कि कहीं से गुरु दीक्षा ले आये बल्कि भक्तिपूर्वक गुरु का अनुगमन करो, उनका संग करके दिन-रात उनकी सेवा करो तब उनके निःसंग आचरण को देखकर तुम स्वयं समझ जाओगे कि हमारे गुरुदेव तो पैसा-धेला की परवाह नहीं करते हैं । कोई कितना भी हीरा-मोती दे जाये, उन्हें उससे कोई मतलब नहीं है तो यह देखकर शिष्य को स्वयं एक शिक्षा मिलेगी और यदि गुरु बनकर कोई बहुत ऊँचा भाषण करता है किन्तु भीतर जाकर कहता है कि आज कथा में थोड़ा पैसा चढ़ा या ज्यादा पैसा चढ़ा तो देखने वाला क्या सोचेगा किन्तु यदि गुरुदेव निःसंग हैं तो शिष्य बिना किसी उपदेश के ही निःसंग बन जायेगा । इसलिए ऐसे गुरु का भक्ति सहित दिन-रात अनुगमन करना चाहिये । ऐसा नहीं कि साल में एक बार दण्डवत कर आये । उनका सतत् अनुगमन करना चाहिये, जैसे मनुष्य भगवान् की सेवा नित्य करता है, वैसे ही सद्गुरु की सेवा भी नित्य करना चाहिये, नित्य न कर सके फिर भी यथाशक्ति करनी चाहिए । गुरु और भगवान् को शास्त्र में एक समान स्थिति पर रखा गया है । वेदों में भी कहा गया है – 'यथा देवे तथा गुरौ ।' जैसे भगवान् की सेवा करे, उसी प्रकार गुरु की सेवा भी वितृष्ण होकर करे । सुख-दुःख, काम-क्रोध इत्यादि को सहो, मैथुनीभाव की गाँठ को यदि सच में छुड़ाना है तो द्वन्द्वों (राग-द्वेष इत्यादि) से दूर रहकर निरन्तर सत्संग (कथा-कीर्तन-सेवादि) का श्रवण-कथन-चिन्तन-सेवन करो ।

.....

जीवन की धारा को बदलने का सबसे सरल-सहज-सरस उपाय एकमात्र 'सत्संग' ही है ।

श्रीकृष्णप्रेमियों का अन्तरंग-भाव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - केशी और व्योमासुर का कृष्ण के द्वारा वध होने पर अक्रूरजी को ब्रज के लिए प्रस्थान करना ही पड़ा । मथुरा में रात भर वे यही चिन्तन करते रहे कि पता नहीं, श्रीकृष्ण मेरे हृदयगत भावों को समझेंगे कि नहीं, कहीं वे मुझे अपना शत्रु न समझ बैठें । फिर सोचते हैं कि नहीं, वे मुझे शत्रु नहीं समझेंगे, वे तो भगवान् हैं, अन्तर्यामी हैं, अतः वे सब कुछ जानते हैं । प्रातःकाल होने पर अक्रूरजी रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के ब्रज की ओर चल दिए । मार्ग में वे इस प्रकार सोचने लगे –

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥

(श्रीभागवतजी – १०/३८/३)

न जाने मेरे कौन से जन्मों का सुकृत उदय हो गया, जिससे मुझे आज श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त होगा । ऐसा कौन सा मैंने तप किया, कौन सा सदाचरण किया अथवा कौन सा दान दिया, जिनके फलस्वरूप आज मुझे कृष्ण का दर्शन प्राप्त होने वाला है ।

अक्रूरजी बहुत प्रसन्न हो गये । ब्रजप्राप्ति और कृष्ण दर्शन प्राप्ति के विचार से उनकी ऐसी विचित्र स्थिति हो गयी कि वे बार-बार कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे लौट आते । उनको यह भी याद नहीं रहा कि किस मार्ग से जाना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए ? जब देह का ही अनुसन्धान उन्हें नहीं रहा तो फिर मार्ग का अनुसन्धान कैसे होता ? अक्रूरजी बार-बार राहगीरों से पूछ लेते कि ब्रज-वृन्दावन के लिए कौन सा मार्ग बढ़िया है ? राहगीरों के बताने से जैसे-तैसे भोर के चले हुए अक्रूरजी को ब्रज पहुँचने में संध्या हो गयी । संध्या समय जब अक्रूरजी नन्दगाँव पहुँचे तो उन्होंने विचार किया कि मुझे कृष्ण दर्शन करने हैं तो सबसे पहले उनका दर्शन कहाँ होगा ? तब तक उन्हें श्रीकृष्ण के चरणचिह्न पृथ्वी पर अंकित दिखायी पड़े । उन चरणचिह्नों के दर्शन करते ही अक्रूरजी का हृदय आनन्द और प्रेम के आवेग से भर उठा, वे रथ से कूदकर उस धूलि में लोटने लगे और बार-बार उस चरण धूलि का अपने सर्वांग में लेपन करने लगे । कभी मस्तक से लगाते, कभी वक्षःस्थल से लगाते तो कभी उदर से लगाते । पूरे शरीर में अक्रूरजी कृष्ण चरणरज का लेपन करने लगे । नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, हृदय में कृष्ण दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा होने लगी, थोड़ी देर में ही उन्हें कृष्ण दर्शन प्राप्त होने वाला है, इसलिए मन में बड़ी भारी प्रसन्नता है । अक्रूरजी सोचने लगे कि श्रीकृष्ण का दर्शन करने कहाँ जाऊँ, या तो वे गोचारण के लिए गये होंगे अथवा नन्दभवन में होंगे अथवा गो-खिरक में होंगे । गोधूलि बेला थी, अक्रूरजी ने देखा कि ब्रज में चारों ओर गायों के चरणों से उठने वाली धूल उड़ रही है ।

ब्रज की इतनी महिमा क्यों है, ब्रज इतना पवित्र देश क्यों है, इसका कारण यही है कि जब संध्या समय श्रीकृष्ण लाखों गायों से, ग्वालबालों से समावृत होकर लौटते थे तो गायों के खुरों से जो धूल उड़ती थी, उस गोधूलि से सारा ब्रज स्नान किया करता था । इसीलिए ब्रज परम पवित्र देश हुआ । जब अक्रूरजी ने देखा कि चारों ओर गोधूलि उड़ रही है तो वे समझ गये कि श्रीकृष्ण गोचारण करके अब वन से ब्रज को लौट रहे हैं । इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब तो मैं सीधे गो खिरक में ही जाऊँगा । उन्होंने अपने रथ को गो खिरक की ओर बढ़ाया । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि समुद्रवत् गायों की बड़ी भारी संख्या है, चारों ओर गायें ही गायें हैं । उन गायों के मध्य ग्वालबालों की मण्डली है और ग्वालबालों के मध्य में दोनों भैया श्रीकृष्ण-बलराम खड़े हुए हैं । कृष्ण-बलराम की रूप माधुरी का पान करके अक्रूरजी से रहा नहीं गया । वे सोचने लगे कि देखो तो सही गोपाल और हलधर भैया को, कैसे ये गायों से समावृत होकर खड़े हैं । इनको गायों के बीच में खड़ा होना, गायों के बीच में रहना कितना प्रिय है ।

वस्तुतः कृष्णावतार तो हुआ ही गायों के लिए है । गोवंश की रक्षा, गोवंश की सेवा – बस इन्हीं कारणों से कृष्णावतार हुआ । भगवान् ने अवतार लेकर गो सेवा करायी ही नहीं, गो सेवा स्वयं की । गिरिराज धारण करके गायों की रक्षा की । इसीलिए उनका नाम ही गोविन्द हो गया । गायों से उन्हें इतना प्रेम है । अक्रूरजी दूर से विलक्षण छटा को देखने लगे, कृष्ण-

बलराम पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए हैं । उनका दर्शन करके अक्रूरजी रथ से उतरकर दौड़ते हुए श्रीकृष्ण के पास गये और उनके चरणों में गिर पड़े । श्यामसुन्दर ने देखा कि अक्रूरजी आये हैं तो 'चाचाजी-चाचाजी' कहकर उन्हें उठाया और अपने हृदय से लगा लिया । 'चाचाजी' सम्बोधन सुनते ही अक्रूरजी का हृदय गद्गद हो गया । वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण मेरे भाव को जान गये, इन्होंने मुझे आत्मीय(अपना) बना लिया, इससे बड़ी उपलब्धि मेरे लिए और क्या होगी ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने अक्रूरजी का भलीभाँति सम्मान किया । श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कंस के अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा । उन्होंने सोच लिया कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं प्रभु से झूठ नहीं बोलूँगा । उन्होंने श्यामसुन्दर से सच्ची बात बताते हुए कहा – 'प्रभो ! नारदजी ने सब बना-बनाया काम बिगाड़ दिया । उन्हें कंस को यह बताने की क्या आवश्यकता थी कि आप देवकी के आठवें पुत्र हैं । अब तो वह दुष्ट दैत्य आपको मारने के लिए कटिबद्ध हो गया है और इस जघन्य कृत्य के लिए उसने मुझे यहाँ भेजा है । यज्ञोत्सव के बहाने आप दोनों भाइयों को वह मथुरा बुलाना चाहता है और वहाँ मल्ल-क्रीड़ा के द्वारा आप दोनों को मरवाना चाहता है । मैंने तो आपसे सत्य बात कह दी, अब आपको जो उचित लगे, उसे आप करें ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने हँसते हुए अक्रूरजी से कहा – 'चाचाजी ! आप चिन्ता न करें । मामाजी ने बुलाया है तो मैं अवश्य जाऊँगा, इस बहाने मथुरा भी घूम लूँगा, कभी मथुरा जाने का अवसर नहीं मिला, प्रथम बार मथुरा में गमन होगा किन्तु आप इस बात का ध्यान रखें कि नन्द बाबा को यह पता न चल जाये कि कंस मुझे मारना चाहता है । यदि उन्हें इस बात का पता चल गया तो फिर वे मुझे मथुरा कभी नहीं भेजेंगे ।'

अक्रूरजी ने नन्दबाबा से तो वही बातें कहीं जो कंस ने उन्हें कहने के लिए भेजा था कि मथुरा में यज्ञोत्सव है, महाराज कंस ने उसे देखने के लिए आप सभी को आमन्त्रित किया है, आप सभी मथुरा पधारें और उस उत्सव का दर्शन करके आनन्द लें । अक्रूरजी की बात सुनकर नन्दबाबा को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा कि कंस ने प्रसन्न होकर हम लोगों को निमन्त्रण भेजा है, यह तो बड़ी अच्छी बात है । नन्दबाबा ने रात को ही ब्रजवासियों को यह घोषणा करवा दी कि कल राम-कृष्ण मथुरा जायेंगे, सभी ग्वालबाल समय से तैयार रहें । जो गोरस घर में रखा हो, उसे एकत्रित कर लें, उसी दौरान हम लोग कंस को वार्षिक कर भी चुका आयेंगे । सम्पूर्ण ब्रज में चारों ओर यह सूचना फ़ैल गयी । ग्वालबालों ने यह समाचार सुना तो वे एक-दूसरे से कहने लगे कि तूने नहीं सुना, कल कन्हैया मथुरा जा रहा है । जा तो रहा है किन्तु हम मना कर देंगे तो वह नहीं जायेगा । ऋषभ सखा, जो कृष्ण से आयु में बड़ा था, वह बोला – 'मैं कन्हैया से बड़ा हूँ । वह मेरी हर बात का मान रखता है, मैं उसे मना कर दूँगा तो कन्हैया मथुरा की ओर पाँव करके भी नहीं सोयेगा और तुम लोग उसके मथुरा जाने की बात कह रहे हो । कन्हैया को मैं मथुरा नहीं जाने दूँगा । जब तक हम लोग यहाँ रहे, कन्हैया के साथ ही हमने खाया-पिया, खेले-कूदे । अब कन्हैया के बिना हम यहाँ रहकर क्या करेंगे ?' एक सखा ने ऋषभ से पूछा कि यदि कन्हैया ने तेरी बात नहीं मानी तब फिर क्या होगा ? ऋषभ ने कहा कि यदि कन्हैया नहीं रुका तो फिर हम सब भी उसके साथ चलेंगे, वह रथ पर बैठकर जायेगा तो हम पैदल चलेंगे परन्तु कन्हैया को अकेले नहीं जाने देंगे ।

ग्वालबालों की समस्या का तो समाधान हो गया किन्तु वे ब्रजदेवियाँ, जो कृष्ण को सर्वात्मसमर्पण कर चुकी थीं, अभी कृष्ण दर्शन से उनका मन तृप्त भी नहीं हुआ था कि वियोगावस्था सामने आ गयी । सभी ब्रजगोपियाँ बैठकर परस्पर चर्चा करने लगीं । कृष्ण का मथुरा गमन ब्रज में एक बहुत बड़ी चर्चा का विषय बन गया । एक गोपी ने अपनी सखी से कहा – 'अरी ! कल कृष्ण मथुरा चले जायेंगे ।' दूसरी गोपी ने कहा – 'तो क्या हुआ ? वैसे भी हमें दिन भर कृष्ण का दर्शन नहीं मिलता है । दिन में गोचारण के कारण वैसे भी हमें कन्हैया का वियोग ही रहता है ।' तीसरी गोपी ने कहा – 'जब गोचारण के लिए कन्हैया जाते हैं तो संध्या के समय उनके आगमन की प्रतीक्षा का हमें सहारा तो रहता है किन्तु यदि वे मथुरा चले गये तो फिर हम कौन सी आशा धारण करेंगी, कृष्ण के कौन से

आगमन की प्रतीक्षा करेंगी, जिसके सहारे अपने प्राणों को जीवित रखेंगी । अब तो कृष्ण की प्रतीक्षा की हमारी आशा भी नष्ट हो जाएगी । हम कृष्ण के बिना कैसे रहेंगी ?' एक अन्य गोपी ने कहा – 'मैंने तो कन्हैया को रोकने का पूर्ण निश्चय कर लिया है । रथ के जाने का एक ही मार्ग है । घर के बन्धु-बान्धव यदि रोकें तो रोकते रहें परन्तु मैं कल कन्हैया को मथुरा नहीं जाने दूँगी । हम सब मिलकर कन्हैया को लौटा लायेंगी । कन्हैया को भी हमारी बात माननी चाहिए । जाने से पहले वह भी एक बार सोचेगा कि ब्रजगोपियों के बिना मथुरा में मेरा मन कैसे लगेगा, इन गोपियों का स्मरण मुझे हमेशा सतायेगा फिर मैं मथुरा जाकर क्या करूँगा ?'

इधर यशोदा मैया को रात भर नींद नहीं आई, बिस्तर पर बार-बार करवट बदलती रहीं । सबेरा होने पर वे उठकर रोने लगीं । मैया का रुदन गोपालजी से देखा नहीं गया, वे दौड़कर मैया के पास गये और उनके आँसू पोंछते हुए बोले – 'मैया ! तू इतना क्यों रो रही है ?' मैया बोलीं – 'लाला ! तू मथुरा जा रहा है । अब मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, किसको अपने साथ सुलाऊँगी, किसको अपने हाथ से भोजन कराऊँगी । यदि तूने मथुरा गमन किया तो मेरा मन अत्यधिक शोकाकुल हो जायेगा । इसलिए तू ब्रज छोड़कर मत जा ।' श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! यदि तू मेरी पूछे तो मेरे मन में तो मथुरा जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं है । परन्तु बाबा ऐसा चाहते हैं कि हम दोनों भैया इसी बहाने मथुरापुरी घूम आयें क्योंकि इस प्रकार का आना-जाना बार-बार तो होता नहीं है, मथुरा दूर भी है । इसलिए अब बाबा के साथ घूमना भी हो जायेगा । तू चिन्ता मत कर, दो दिन के बाद मैं लौट आऊँगा । तेरे बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा ?'

कन्हैया की बात सुनकर मैया ने अपने लाला का श्रृंगार किया । कन्हैया की आँखों में अंजन लगाया, मस्तक पर तिलक लगाया, उसके केशों को सँवारा । इसके बाद मैया ने अपने हाथों से कन्हैया को भोजन कराया । मैया ने मन में यह भी सोचा कि कहीं ये वह अवसर तो नहीं है कि मैं अपने कन्हैया का अन्तिम दर्शन कर रही हूँ । कहीं ऐसा न हो कि आज के बाद मुझे अपने कन्हैया का कभी दर्शन ही न हो । कहीं ऐसा ही अवसर तो नहीं आ गया ? मैया रोती भी जा रही है और अपने लाला को भोजन भी खिलाती जा रही है । उसी समय अक्रूरजी रथ लेकर द्वार के सामने आ गये । दाऊ भैया मैया को प्रणाम करके रथ पर बैठ गये । श्यामसुन्दर ने भी जब यशोदा मैया को प्रणाम किया और जाने की अनुमति माँगी तो मैया ने कहा – 'लाला ! तू थोड़ी देर और रुक जा, मैं तुझको ऐसे नहीं जाने दूँगी ।' मैया यशोदा ने बड़े-बड़े ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब बढ़िया सा मुहूर्त देखो, कौन सा मुहूर्त मेरे लाला की यात्रा को मंगलमय करेगा, मैं उसी मुहूर्त में लाला को यहाँ से भेजूँगी क्योंकि मेरा लाला शत्रु की नगरी में जा रहा है, असुर की नगरी में जा रहा है, कहीं वहाँ उसका अनिष्ट न हो जाये । मथुरा से कंस के भेजे बड़े-बड़े असुर यहाँ आये और वहाँ तो ऐसे बहुत से असुर हैं, मथुरा तो असुरों का पूरा गढ़ है । मेरा लाला असुरों की नगरी में जा रहा है तो बढ़िया से मुहूर्त में इसका प्रस्थान होना चाहिए, जिससे कि इसका कोई अमंगल न हो, मंगल ही मंगल हो । ज्योतिषी आये और यशोदाजी से बोले – 'मैया ! तू चिन्ता मत कर । तेरा बालक मथुरा में जाकर असुरों का वध ही करेगा, उन पर विजय प्राप्त करेगा । इतना ही नहीं, कंस का भी वध करके यह लक्ष्मीपति बन जायेगा ।' ज्योतिषियों की बात सुनकर मैया को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें थोड़ा धैर्य हुआ । मैया ने सोचा कि चलो, मेरे लाला के वहाँ जाने से मंगल ही होगा, उसका कुछ अनिष्ट नहीं होगा । श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! तू देख, हमारे यहाँ गोधन बढ़ रहा है, गायों की वृद्धि हो रही है । गायों का उत्कर्ष बढ़ने का लक्षण यही है कि जिस देश में गायों की वृद्धि होती है, उस देश का, वहाँ के निवासियों का कभी अमंगल नहीं होता है । इसलिए गोवंश के वर्धन से ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा में मेरा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा । मैया ! तू शंका मत कर । कोई वहाँ मेरा अमंगल नहीं कर पायेगा । मंगल ही मंगल होगा क्योंकि गोवंश की कृपा हमारे ऊपर बराबर बनी हुई है । जहाँ गोवंश सुरक्षित रूप से, स्वतन्त्र रूप से श्वास ग्रहण करता है, वह देश निरन्तर वृद्धि को ही प्राप्त हुआ करता है । जहाँ बहुत सी गायें रहती हैं और ऐसी गायें, जो पूर्णतया

सुखी हों, सन्तुष्ट-पुष्ट हों, उन गायों के रहने से उस देश का, उस स्थान का मंगल ही मंगल हुआ करता है ।' इस प्रकार गोपालजी ने अपनी मैया को समझाया । अब मैया से अनुमति लेकर कृष्ण जैसे ही रथ पर बैठे और थोड़ी दूर ही रथ गया तो देखा कि गोपियों ने मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है । अक्रूरजी ने गोपियों से प्रार्थना की कि तुम लोग मुझे मार्ग देने की कृपा करो किन्तु किसी ने भी उन्हें मार्ग नहीं दिया । किसी गोपी ने अक्रूरजी का हाथ पकड़ लिया, किसी ने घोड़ों की लगाम पकड़ ली, कोई कृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें समझाने लगी, कोई दाऊ भैया का हाथ पकड़कर समझाने लगी । श्रीकृष्ण ने उन सब गोपियों को सान्त्वना देते हुए कहा – 'हे ब्रजदेवियो ! केवल अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मन की वृत्ति सदा प्रेमास्पद में लगी रहे, चाहे प्रेमी कहीं भी हो, किसी भी देश में किसी भी जगह हो लेकिन मन यदि प्रेमी में है तो प्रेम का यही सच्चा लक्षण है, यही प्रेम की परिभाषा है । अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मैं सदा तुम्हारे पास ही रहूँ, यह प्रेम नहीं है । मैं तुमसे दूर भी चला जाऊँ, तब भी तुम निरन्तर मेरा स्मरण करती रहो, इसी का नाम प्रेम है और हे देवियो ! तुम्हारे प्रेम का बदला तो मैं कभी चुका ही नहीं सकता । तुम जब भी मेरा स्मरण करोगी, उसी समय तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायेगा । मैं दो दिन में लौटकर शीघ्र ही ब्रज में आ जाऊँगा । तुम्हारे बिना मथुरा में भी मेरा मन कैसे लगेगा ?' इस प्रकार श्यामसुन्दर ने ब्रजगोपिकाओं को आश्वस्त किया और रथ को आगे बढ़ाने की अक्रूरजी को उन्होंने अनुमति दी । इधर यशोदा मैया विचार करने लगीं कि मेरे रोकने पर तो कन्हैया नहीं माना पर कम से कम गोपियों के रोकने पर तो मान जाता, ऐसा मेरा भरोसा था । अब तो इसने गोपियों को भी न जाने क्या पाठ पढ़ा दिया कि वे भी लाला को रोक नहीं रही हैं । आज की रात्रि मैं कैसे व्यतीत करूँगी ? कन्हैया के बिना यह ब्रज मुझे अनाथ सा लग रहा है । मैं कन्हैया के बिना यहाँ कैसे रहूँगी, ऐसा सोचते हुए अत्यधिक शोक वेदना के कारण मैया धरती पर गिर पड़ीं । श्यामसुन्दर रथ से उतरे और मैया के पास जाकर उनके अश्रु पोंछते हुए बोले – 'मैया ! जब तक तू सप्रसन्न मुझे जाने की अनुमति नहीं देगी तब तक मैं मथुरा गमन नहीं करूँगा । तू क्यों इतना रो रही है ?' यशोदा मैया ने कहा – 'लाला ! मैंने ऐसा सुना है कि तू मेरा पुत्र नहीं है, तू तो देवकी का पुत्र है । तू मथुरा जा रहा है तो मेरा इतना सन्देश देवकी को अवश्य दे देना कि वह मुझे तेरी माँ समझे अथवा न समझे परन्तु मुझे तेरी धाय, तेरी दासी तो समझती ही रहे । इतनी कृपा वह मुझ पर करती ही रहे । यह सन्देश मैया देवकी को अवश्य दे देना ।' यशोदा मैया की ऐसी बात सुनकर श्यामसुन्दर के कमल सरीखे नेत्रों में अश्रु भर आये, उन्होंने कहा – 'मैया ! यदि तू ऐसी बात पुनः कहेगी तो तेरा लाला फूट-फूटकर रोने लग जायेगा । देवकी मैया ने भले ही मुझे जन्म दिया हो परन्तु अनेकानेक कष्टों को सहकर मेरा लालन-पालन तो तूने ही किया है । इतना ऊधम यहाँ मैंने किया किन्तु तूने मुझे कभी डाँटा-फटकारा भी नहीं । मैया ! मैं तेरी सेवा, तेरे प्रेम को कभी भूल नहीं पाऊँगा । तू चिन्ता मत कर और सप्रसन्न मुझे मथुरा जाने की अनुमति दे । मैं अति शीघ्र वापस आ जाऊँगा ।' ऐसा कहकर गोपालजी ने मैया का चरण स्पर्श किया । यशोदा मैया के चरण स्पर्श करके और उनकी अनुमति लेकर तब श्यामसुन्दर रथ पर विराजे । इधर नन्दबाबा ग्वालबालों के साथ गोरस इकठ्ठा करके पहले ही छकड़ों पर बैठकर मथुरा के लिए प्रस्थान कर गये । कृष्ण-बलराम के साथ अक्रूरजी बात करते हुए धीरे-धीरे मथुरा की ओर बढ़े । मार्ग में ही अक्रूरजी ने यमुनाजी में स्नान किया । यमुना जल में डुबकी लगाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने ऐश्वर्यमय रूप का दर्शन कराया । यह देखकर अक्रूरजी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।

इसके बाद अध्याय – ४० में अक्रूरजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अक्रूरजी द्वारा स्तुति कर लेने के बाद भगवान् ने अपने ऐश्वर्यमय रूप को छिपा लिया । जब अक्रूरजी ने देखा कि भगवान् का वह दिव्य रूप अन्तर्धान हो गया तब वे जल से बाहर निकल आये और रथ हाँककर श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को लेकर दिन ढलते-ढलते मथुरा पहुँच गये ।

ब्रजवासियों की विरह-दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - जब से श्रीकृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा में आये, तभी से उनका चित्त बड़ा विक्षिप्त रहा करता था। श्रीकृष्ण ब्रज की स्मृति में बड़े ही उदास रहा करते थे और प्रायः रुदन किया करते थे। उद्धवजी प्रभु के प्रिय सखा और उनके मन्त्री भी थे। वे देवगुरु बृहस्पति के शिष्य थे। भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी ज्ञानी तो बहुत हैं और देवगुरु बृहस्पति के शिष्य भी हैं। इनके ज्ञान में तो कोई कमी नहीं है किन्तु अभी प्रेम के अभाव में इनका ज्ञान शुष्क है, नीरस है और इस ज्ञान का कोई लाभ नहीं है। इनको मैं ऐसी कौन सी पाठशाला में भेजूँ, जहाँ से उद्धवजी प्रेम की शिक्षा प्राप्त करके प्रेम से परिपूर्ण हो जाएँ। भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी को प्रेम की शिक्षा दिलाने के लिए ब्रजभूमि ही सर्वोत्तम पाठशाला है क्योंकि जो भूखा है, जिसका स्वयं का पेट नहीं भरा, वह दूसरे की भूख क्या मिटायेगा ? जिनका हृदय मेरे प्रेम से पूर्णतया परिपूर्ण है, ऐसी प्रेम की आचार्या ब्रजगोपियों के पास यदि उद्धवजी को भेजा जाये, तब इनका ज्ञान भी जब प्रेम से सिञ्चित होगा तो यह ज्ञान सरस होगा, यह ज्ञान बढ़िया हो जायेगा।

'श्रीकृष्ण' मथुरा में 'ब्रज' की याद में प्रायः रुदन किया करते और उद्धवजी से कहते थे – **'ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।'** उद्धवजी श्रीकृष्ण से कहते कि प्रभु आप ये क्या कह रहे हैं ? आप संसार के लोगों को तो सिखाते हैं कि मोह नहीं करना चाहिए परन्तु अब इस विकट मोह ने आपको कैसे ग्रसित कर लिया, आप तो स्वयं ही मोहग्रस्त हो गये हैं। मैंने पहले तो कभी आपको रोते हुए नहीं देखा था किन्तु अब तो इस प्रकार आप रो रहे हैं कि अश्रुधारा रोके नहीं रुक रही है। एक दिन श्यामसुन्दर उद्धवजी के साथ यमुना तट पर घूमने के लिए गये। श्यामसुन्दर ने जैसे ही यमुनाजी के उस नीले प्रवाह को देखा तो उन्होंने अपनी चरण पादुका को उतारकर यमुनाजी को प्रणाम किया और रोने लगे। श्यामसुन्दर ने उद्धवजी से कहा कि जिस समय मैंने गोलोक धाम में श्रीराधारानी के साथ विहार किया, अन्तरंग लीलायें कीं, उस समय मेरे और श्रीजी के मुखमण्डल पर स्वेद बिंदु उभर आये। उन्हें देखकर सब सखियों ने हम दोनों से प्रार्थना की – 'हे युगल सरकार ! आपके मुख पर लीलाविहार से उत्पन्न हुए जो श्रम बिन्दु हैं, ये हमें पीने के लिए मिल जाएँ, आप ऐसा कोई उपाय कीजिये।' सखियों की प्रार्थना से अपने स्वेद बिन्दुओं को सखियों के पीने योग्य बनाने के लिए ही हमने उन स्वेद बिन्दुओं से यमुनाजी को प्रकट किया। अतः हम राधा-माधव के लीलाविहार के समय हमारे मुख पर जो स्वेद बिंदु उत्पन्न हुए, वे स्वेद बिन्दु ही यमुना जी के रूप में प्रवाहित हो रहे हैं। राधा-माधव का प्रेम ही यमुनाजी के रूप में प्रवाहित हो रहा है। उस यमुनाजी को देखकर श्यामसुन्दर स्वयं को रोक नहीं पाए और जोर-जोर से रुदन करने लगे। उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! आप इस प्रकार रुदन क्यों कर रहे हैं ?' उस समय श्यामसुन्दर ने उद्धवजी को श्रीजी की अन्तरंग लीलाओं के बारे में बताया। श्यामसुन्दर भूमि पर अपने चरणों को रखकर और हाथ जोड़कर श्रीजी से प्रार्थना करने लगे – 'हे स्वामिनी जू ! मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया, जिसके कारण आपने मुझे ब्रज से बाहर निकाल दिया।' श्यामसुन्दर बार-बार राधारानी से प्रार्थना करने लगे –

हे वृषभानुसुते ललिते मैं कौन कियो अपराध तिहारो।
काढि दियो ब्रजमंडल सों कछु और हू दण्ड रह्यो अति भारो॥
आपनो जान दया की निधान भई सो भई अब वेगि निवारो।
देहु सदा ब्रज को बसिबो वह कुञ्ज कुटीर यमुना को किनारो॥

श्यामसुन्दर ने श्रीजी से प्रार्थना की कि मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया कि सदा-सर्वदा के लिए आपने मुझे ब्रज के बाहर कर दिया, ब्रज से निकाल दिया। हे स्वामिनी जू ! अब कृपा करो, पुनः मुझे ब्रज में बुलाओ। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर रोने लगे। उद्धवजी ने उन्हें सँभाला और पूछा कि प्रभो ! आप इतना क्यों रोते हैं ? श्यामसुन्दर ने कहा – 'उद्धव ! यदि गोपीजन रोना बंद कर दें तो मेरा भी रोना बन्द हो जायेगा। यदि वे रोती रहीं तो मैं भी रोता रहूँगा क्योंकि – **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** यदि वे रो-रोकर मेरी याद करती हैं तो मेरे लिए भी रो-रोकर उनका स्मरण करना स्वाभाविक है।'

उद्धवजी अपने ब्रह्मज्ञान में डूबे हुए सोचने लगे कि मैं एक बार ब्रज चला जाऊँ तो गोपियों का रोना बन्द हो

जायेगा और यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी तो कृष्ण का रोना अपने-आप ही बन्द हो जायेगा । उद्धवजी ने श्रीकृष्ण से आज्ञा माँगी – 'प्रभो ! क्या मैं एक बार ब्रज में जाकर गोपियों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश से संतुष्ट कर आऊँ ? यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी फिर आप भी तो नहीं रोयेंगे ।' श्रीकृष्ण बोले – 'उद्धव ! यदि ब्रजवासी नहीं रोयेंगे तो मैं भी नहीं रोऊँगा ।'

उद्धवजी ब्रज जाने को तैयार हो गये । श्यामसुन्दर ने अपना पीताम्बर उतारकर उन्हें दिया और कहा –

'उद्धव ! यह पीताम्बर लेते जाओ । ये मेरा उत्तरीय लेते जाओ, मेरी वनमाला लेते जाओ । इनको धारण करके ही ब्रज में जाना क्योंकि यदि ब्रज में तुमने मेरा उत्तरीय धारण नहीं किया तो ब्रजवासी तुमसे बात भी नहीं करेंगे । ये ब्रजवासी ब्रह्मज्ञानी-वेदान्तियों से बात नहीं करते । यदि तुम मेरा उत्तरीय धारण करके जाओगे तो ब्रजवासी सोचेंगे कि इस व्यक्ति ने कृष्ण का सा वस्त्र धारण किया है, ऐसा लगता है कि यह कृष्ण का कोई परिचित है, कृष्ण का कोई घनिष्ठ सम्बन्धी है तो वे ब्रजवासी तुमसे बात करेंगे ।'

श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उद्धवजी ब्रज पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा –

इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१०)

गायें भी बड़ी पुष्ट हैं, बछड़े भी पुष्ट हैं । गायों के छोटे-छोटे बछड़े इधर-उधर उछल-कूद रहे हैं । उद्धवजी सोचने लगे कि कृष्ण तो कहते थे कि सारा ब्रज मेरे विरह में रोता है, ब्रज के पशु-पक्षी तक मेरी याद करके रोते हैं परन्तु यहाँ तो इसके विपरीत हो रहा है । बछड़े आनन्द से उछल-कूद रहे हैं । ऐसा क्यों हुआ तो इसका उत्तर यह है कि ब्रज का प्रत्येक ब्रजवासी यह चाहता है कि कृष्ण कहके गये हैं कि मैं एक दिन ब्रज में लौटूँगा तो कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण लौटकर ब्रज में आ जाएँ और हमारा शरीर कृष्ण के विरह में एकदम जर्जर हो जाये तो यह देखकर कृष्ण को कितना कष्ट होगा । जब हम ब्रजवासी कृष्ण को दुर्बल दिखायी देंगे तो उन्हें कितना कष्ट होगा, अतः श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए गाय-बछड़े खाते हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए गोपियाँ श्रृंगार करती हैं । एक बार एक गोपी ने अपनी सखी से कहा कि मैंने तो श्रृंगार करना छोड़ दिया है ।

हौं ता दिन कजरा दैहौं ।
जा दिन नन्दनन्दन के नैनन,
अपने नैन मिलैहौं ।

मैं तो अपने नेत्रों में काजल ही नहीं लगाऊँगी, मैंने तो सब श्रृंगार त्याग दिया है । उसकी बात सुनकर दूसरी गोपी ने कहा – 'अरी ! तू बावरी हो गयी है । मान ले आज संध्या तक यदि कृष्ण आ गये और तूने श्रृंगार नहीं किया है तो जब वे तुझे श्रृंगारविहीन अवस्था में देखेंगे तो क्या उन्हें प्रसन्नता होगी ? कृष्ण का मन कितना दुखी होगा और यदि कृष्ण का मन दुखी होगा तो क्या तू प्रसन्न हो जाएगी ?'

अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ श्रृंगार करती हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ भोजन करती हैं । ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने गोपियों के बारे में अर्जुन से कहा है – **'निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते'**

तभी तो गोपियों को भगवान् ने अपना सर्वोच्च भक्त माना है क्योंकि वे अपने शरीर को भी अपना समझकर नहीं सजाती हैं, वे तो अपने शरीर को भी कृष्ण का शरीर मानकर कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उसे सजाती हैं । उद्धवजी जब ब्रज में पहुँचे तो नन्दबाबा से मिले । नन्दबाबा और उद्धवजी के संवाद का भागवत में वर्णन है । नन्दबाबा ने उद्धवजी के मुख से जब सुना कि कंस की मृत्यु हो गयी, जबकि उनके सामने ही कृष्ण के द्वारा कंस का वध हुआ था परन्तु उन्होंने कहा –

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१७)

उद्धव जी ! यह बहुत बढ़िया हुआ कि दुष्ट कंस मर गया । नन्दबाबा का वात्सल्य देखो, उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरे लाला ने कंस को मारा, उन्होंने कहा कि कंस तो अपने पापों के कारण मर गया । हमारे कुलदेवता नारायण भगवान् ने उसको मार दिया अन्यथा मेरा लाला तो छोटा सा है, उसमें कहाँ इतनी ताकत है, जो इतने बलशाली कंस को मार सके ।

गोपियों के सत्संग से बने ब्रजभावुक 'उद्धवजी'

नन्दबाबा ने आगे कहा – 'उद्धवजी ! मैं कृष्ण की कुशलता के बारे में आपसे नहीं पूछूँगा । मैं तो बस एक ही बात जानना चाहता हूँ, मुझे एक बार यह बता दो कि कृष्ण ब्रज में कभी आयेंगे कि नहीं ।' यदि उद्धवजी के मुख से भूल से भी यह निकल जाता कि कृष्ण नहीं आयेंगे तो नन्दबाबा तो उसी क्षण अपने प्राण त्याग कर देते । उद्धवजी ब्रजवासियों की दशा को देखते ही यह समझ गये कि इनको मैं कभी भूलकर भी यह नहीं कहूँगा कि कृष्ण नहीं आयेंगे । उद्धवजी और नन्दबाबा के संवाद का तो भागवत में वर्णन भी है किन्तु यशोदा मैया और उद्धवजी के संवाद का शुकदेवजी ने वर्णन ही नहीं किया । यशोदा मैया के संवाद के वर्णन करने का शुकदेवजी साहस ही नहीं कर सके क्योंकि उनका ऐसा निश्छल प्रेम था कि जो अवर्णनीय है । यशोदाजी की स्थिति उद्धवजी ने देखी –

जब से बिछुड़े हैं ब्रजराज नैनन की परतीति गयी ।

मैया तो कृष्ण के विरह में अन्धी सी हो गयी थी । उसे कुछ दिखायी ही नहीं देता था । उद्धवजी ने नन्दबाबा और यशोदा मैया को संतुष्ट करने के लिए कहा –

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/३४)

'नन्दबाबा और यशोदा मैया ! आप लोग चिन्ता मत करिए । कृष्ण-बलराम दोनों भैया ब्रज में शीघ्र ही लौटेंगे ।' उद्धवजी के मुख से ऐसा सुनते ही नन्दबाबा को तो बहुत अधिक प्रसन्नता हुई । उन्होंने उद्धवजी का हाथ पकड़ लिया । यशोदा मैया भी आनन्द से भरकर नन्दभवन में मिठाइयाँ बाँटने लगीं । 'मेरा लाला लौटेगा, मेरा कनुआ वापस आएगा' – इतना सुनते ही मैया की प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही नहीं रही । इधर, उद्धवजी के मन में ब्रजगोपियों से मिलने की इच्छा हुई । गोपिकायें नन्दभवन के बाहर के मार्ग से होकर निकल रही थीं । उन्होंने देखा कि नन्दभवन के बाहर एक रथ खड़ा हुआ है । एक गोपी ने अपनी सखियों से कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अक्रूर फिर से आ गया है । दूसरी गोपी ने कहा कि अक्रूर तो स्वामिभक्त था । उसका गुण देखो कि अपने स्वामी का हित करने के लिए हम गोपियों की हत्या करके चला गया परन्तु अब पुनः यह अक्रूर क्यों आया है ? अब तो इसका स्वामी कंस भी मर गया तो फिर अब यह किसका काम बनाने आया है ? एक अन्य गोपी ने कहा कि मरने के बाद मृत जीवात्मा का पिण्ड दान किया जाता है तो ऐसा लगता है कि अब अक्रूर हम लोगों को ले जाकर कंस का पिण्ड दान करेगा । इस प्रकार सभी गोपियाँ परस्पर चर्चा कर रही थीं कि तब तक उद्धवजी वहाँ आ गये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – गोपियों ने उद्धवजी को देखा तो उन्हें देखकर वे थोड़ा संकोच करने लगीं । उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी की आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्ण से मिलती जुलती है । समस्त गोपिकायें उनका परिचय प्राप्त करने के लिए उद्धवजी को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गयीं । जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो हमारे प्यारे श्यामसुन्दर का सन्देश लेकर आये हैं तो गोपियों ने उद्धवजी से कहा –

निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/७)

'उद्धवजी ! श्रीकृष्ण हमको छोड़कर इस प्रकार चले गये, जैसे धनहीन पुरुष को वेश्या छोड़ देती है । विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद जैसे शिष्य अपने गुरु को छोड़ देते हैं, दान-दक्षिणा लेने के बाद ऋत्विज अपने यजमानों को छोड़ देते हैं और फलहीन वृक्षों को पक्षीगण छोड़ देते हैं, ऐसे ही श्रीकृष्ण हमें छोड़कर चले गये । ब्रज अनाथ हो गया है, केवल श्रीकृष्ण के स्मरण से हमारे प्राण टिके हुए हैं । श्रीकृष्ण स्मरण ही हमारा प्राणाधार बना हुआ है ।'

इसके बाद ब्रजगोपियों ने भ्रमर गीत का वाचन किया । श्रीराधारानी के चरणों के आसपास एक भ्रमर मंडराने लगा । उस भ्रमर को श्रीजी ने बहुत कूट शब्द कहे, मानो उस भ्रमर के बहाने श्रीजी उद्धवजी को प्रेम सिखा रही हैं कि उद्धव ! प्रेम किसे कहते हैं ? कृष्ण तो प्रेम करना नहीं जानते हैं । चरणों के पास मँडराते हुए भ्रमर से श्रीजी ने कहा –

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/१२)

अरे धूर्त, कपटी ! भाग जा यहाँ से, तू मेरी मनुहार करने के लिए आया है । जाकर दर्पण में देख, तेरी मूँछों पर हमारी सौतों का कुंकुम लगा हुआ है । श्रीकृष्ण ने अवश्य ही मथुरा की उन नारियों को आलिंगन दान दिया होगा । आलिंगन काल में उन नारियों के वक्षःस्थल पर जो कुंकुम लगी होगी, वह कृष्ण की वनमाला पर लग गयी होगी और कृष्ण की वनमाला से उस कुंकुम को लेकर तू यहाँ आ गया है । तेरा मुख अपवित्र है । तू हमारी सौतों का स्पर्श करके आया है, उनके कुंकुम को ढोकर यहाँ लाया है, इसलिए हम तुझे अपना स्पर्श दान नहीं देंगी । हमें छू मत, दूर हो जा ।

भ्रमर की वृत्ति कैसी होती है, पहले वह फूल के पास आता है, उसको खूब मनाता है । बेचारा फूल उसको अपना सब कुछ दे देता है किन्तु भ्रमर उसके रस का पान करके उड़कर चला जाता है, मुड़कर फूल की ओर देखता भी नहीं है । ऐसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । महारास में उन्होंने हमारे साथ रास-विलास किया, रमण किया, रति दान किया किन्तु अब हम ब्रजगोपियों को अनाथ छोड़कर चले गये । पुष्प का रस लेकर जैसे भ्रमर उड़ जाता है, वैसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । वे कहकर गये थे कि मैं दो दिन में लौट आऊँगा किन्तु उन्होंने आज तक भी हमारी सुधि नहीं ली । अब भी स्वयं नहीं आये, तुझे यहाँ भेज दिया, मनुहार कराने के लिए । तू हमें कृष्ण की चर्चा मत सुना । वे हमारे लिए नये नहीं हैं । हम उन्हें बहुत पहले से जानती हैं । एक बात बता, किस अवतार में, किस रूप से उन्होंने भलाई की है ? वामन के रूप में आये तो बेचारे बलि का सब कुछ छीन लिया, उसे पाश में बाँध दिया, उसके अनुचर दैत्यों को अपने पार्षदों से पिटवाया । क्या इसी को भलाई कहा जाता है ? रामावतार को धर्मरूप कहा जाता है, उसमें भी उन्होंने क्या किया, शूर्पणखा को विरूप कर दिया । किसलिए वे इतने सुन्दर हुए, बेचारी शूर्पणखा उनके रूप से मोहित होकर उनके पास आयी थी । उसका क्या दोष था ? चलो, उससे विवाह न करते परन्तु उन्होंने तो उसे विवाह के योग्य भी नहीं छोड़ा, उसके नाक-कान काट लिए । सोच लिया कि न मैं इसके साथ विवाह करूँगा और न ही किसी और के साथ इसका विवाह होने दूँगा । यह कौन सा धर्म है, यह कौन सा न्याय है ? इसलिए भ्रमर ! हमारे सामने तू उस निष्ठुर की चर्चा मत कर, उसका नाम भी मत ले ।

उद्धवजी से रहा नहीं गया, उन्होंने गोपियों से पूछा कि जब तुम कृष्ण की चर्चा सुनना नहीं चाहती हो तो फिर उनकी चर्चा करती क्यों हो ? ब्रजगोपियों ने कहा –

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।

श्रीकृष्ण की लीला-कथा ऐसा अमृत है कि इस अमृत बिन्दु का एक बार भी चस्का यदि किसी को लग गया तो वह अपना घर-द्वार स्वाहा कर देगा परन्तु इस अमृत को छोड़ नहीं पायेगा । उद्धवजी ! अब उसकी चर्चा ही तो हमारा प्राणाधार रह गयी है । यदि उसकी चर्चा भी हमने छोड़ दी तो हमारे प्राण नहीं बचेंगे । गोपियों के लिए प्राण त्याग करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी । वे यदि चाहतीं तो जिस समय कृष्ण ब्रज छोड़कर गये, उसी समय अपने प्राण त्याग देतीं परन्तु ब्रजाङ्गनाओं के लिए प्राण त्याग करना बड़ी बात नहीं थी, उनकी तो यही धारणा थी कि कृष्ण कहीं ब्रज में कभी भी आ गये और हम लोग मृत्यु को प्राप्त हो गयीं तो उन्हें कितना कष्ट होगा । अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों को धारण कर रखा था, कृष्ण के सुख के लिए ही वे जीवित थीं । उनके जीवित रहने का और कोई दूसरा प्रयोजन नहीं था । उद्धवजी ने गोपियों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करने का प्रयास किया परन्तु ब्रजदेवियों ने उनके एक-एक उपदेश का खण्डन कर दिया । उद्धवजी निर्गुण-निराकार ज्योति की उपासना बताने लगे तो ब्रजगोपियों ने उनसे कहा कि यह सीख जाकर किसी और को सिखाना । उन्होंने कहा – **जो मुख नाहिन होतो कहो किन माखन खायो** आप कहते हैं कि उनके (परब्रह्म कृष्ण के) मुख नहीं है किन्तु हमने तो श्यामसुन्दर को अपने हाथों से माखन खिलाया है । हम कैसे इस बात को स्वीकार कर लें कि हमारा कन्हैया बिना मुख वाला है । **पाँयन बिन गो संग कहो बन-बन को धायो** – आप कहते हैं कि उनके चरण नहीं हैं । यदि उनके चरण नहीं हैं तो फिर वे वन-वन में गायों के पीछे कैसे दौड़े ? गो चारण के लिए बिना चरणों के वे वन में कैसे जाते ? **आँखन में अंजन दयो गोवर्धन लयो हाथ नन्द-जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रज**

नाथ हमने अपने हाथों से कृष्ण के नेत्रों में अंजन लगाया है । इसलिए हे उद्धवजी ! आप हमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना मत बताइये । यह उपासना हमारे योग्य नहीं है । इसे हम धारण नहीं कर सकेंगी । इस तरह गोपिकाओं ने उद्धवजी के प्रत्येक उपदेश का खण्डन कर दिया और उन्हें अपने प्रेम रूपी ज्ञान से परिपूर्ण कर दिया । उद्धवजी आये तो इस लक्ष्य से थे कि गोपियों को ज्ञान का उपदेश करके मथुरा लौट जाऊँगा परन्तु ब्रजगोपियों के प्रेम की उच्च अवस्था को देखकर उन्हें ब्रज में रहते छः महीने व्यतीत हो गये, जाने का नाम ही नहीं लिया । मथुरा में वे कृष्ण से कहा करते थे कि आप परब्रह्म होकर रोते क्यों हैं, आपको रोना नहीं चाहिए किन्तु ब्रज में गोपियों के साथ स्वयं रोते थे क्योंकि गोपियों ने उन्हें सिखाया कि प्रेम कैसे किया जाता है ? यदि रुदन नहीं करोगे, प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए हृदय में यदि उत्कण्ठा नहीं होगी तो कैसे प्रेम करोगे । इस प्रकार ब्रजगोपियों ने उद्धवजी को उत्कृष्ट प्रेम से परिपूर्ण कर दिया । एक दिन स्वयं श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धव ! तुम्हारे मित्र श्रीकृष्ण मथुरा में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । इसलिए अब तुम मथुरा वापस चले जाओ ।' मथुरा के लिए चलते समय उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना की – 'हे प्रभो ! मेरे द्वारा यदि कोई सुकृत हुआ हो तो आप मुझ पर यही कृपा कीजिये कि इस ब्रजभूमि का कोई झाड़, लता-औषधि आप मुझे बना दीजिये ।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

मुझे ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं चाहिए, ऊँचा कुल मुझे नहीं चाहिए । ब्रज-वृन्दावन धाम में किसी भी योनि में, किसी भी जाति में मेरा जन्म हो जाये तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा । ब्रजभूमि में यदि मैं पाषाण ही बन जाऊँगा तो जब मार्ग के मध्य पड़ा रहूँगा तब ब्रजगोपिकाएँ जब दधि विक्रय के लिए जाएँगी तो अपने चरण तल से मुझ निश्चेष्ट पाषाण को जब एक ओर कर देंगी तो इनके पाद स्पर्श मात्र से मेरे तो जन्म-जन्मान्तर धन्य हो जायेंगे, मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा ।' ऐसा कहकर उद्धवजी गोपियों की चरण रज की वन्दना करने लगे – **वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।**

यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/६३)

'मैं नन्दबाबा के ब्रज में रहने वाली गोपिकाओं की चरण रज की वन्दना करता हूँ । इन ब्रजाङ्गनाओं के द्वारा श्रीकृष्ण यश का जो गायन किया गया है, उससे केवल पृथ्वी ही नहीं अपितु त्रिलोकी पवित्रता को प्राप्त हो रही है ।' ब्रज से मथुरा जाते समय श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धवजी ! कृष्ण का सन्देश तो तुमने मुझसे कह दिया, कृष्ण की स्थिति भी मुझे बता दी किन्तु मैं तो हूँ वज्रमयी, मुझे कुछ नहीं हुआ परन्तु कन्हैया का मन नवनीत खा-खाकर माखन की तरह बन गया है । इसलिए श्रीकृष्ण को हम गोपियों की स्थिति के बारे में तुम जरा भी संकेत मत करना, अन्यथा उनका हृदय द्रवित हो जायेगा, उनको बहुत कष्ट होगा ।' श्रीजी व ब्रजगोपियों के चरणकमलों की वन्दना करके उद्धवजी मथुरा पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका गाढ़ आलिंगन किया और उनसे कहा – 'उद्धव ! यह तुम्हारी वही देह है जो ब्रज रज से, ब्रज प्रेम से लिप्त होकर आई है । अब तुम समझे हो कि प्रेम किसे कहते हैं, अब तुम प्रेम को जान पाए हो ।' उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! अब मैं समझ गया कि पहले आप क्यों रोया करते थे ?' ऐसा कहकर वे स्वयं रोने लगे; उन्हें रोते देखकर श्यामसुन्दर हँसने लगे और बोले – 'चलो, अब जो मेरी इच्छा थी, वह पूरी हो गयी । अब तक तो यहाँ मैं एक ही रोने वाला था, अब दूसरा रोने वाला भी साथ मिल गया । अब हम दोनों साथ में बैठकर रोया करेंगे और ब्रजगोपियों का स्मरण किया करेंगे ।' उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! उन ब्रजदेवियों के विरह का दुःख आपके ब्रज जाये बिना दूर नहीं होगा । मैंने तो सोचा था कि ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा उनके शोक को दूर करके आऊँगा परन्तु मैं असमर्थ रहा । उनके दुःख को दूर नहीं कर सका । जब तक आप ब्रज में नहीं जायेंगे तब तक वे ब्रजगोपियाँ आपके वियोग में सदा व्याकुल ही रहेंगी । वे भी रोती रहेंगी, आप भी रोते रहेंगे और अब आपके साथ मैं भी रोता रहूँगा ।' इस प्रकार उद्धवजी को भगवान् कृष्ण ने गोपिकाओं के द्वारा प्रेम का ज्ञान दिलवाया ।

अर्जुन का अहं-शमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार की बात है । द्वारका पुरी में किसी ब्राह्मणी के पुत्र पैदा होते ही मर जाते थे । जब भी ब्राह्मण का पुत्र मरता तो वह राजमहल के द्वार पर आकर यही कहता कि यह ब्राह्मण द्रोही, धूर्त और विषयी क्षत्रियों का दोष है जो मेरे बालक की मृत्यु हुई । नवें बालक के मरने पर जब वह राजमहल के दरवाजे पर आया और वही बात कहने लगा तो उस समय अर्जुन द्वारका में भगवान् कृष्ण के पास बैठे हुए थे । उनके सामने वह ब्राह्मण गाली देने लगा – 'आजकल के राजा बड़े पापी हैं, इनके पाप से मेरे पुत्रों की बार-बार मृत्यु हो रही है ।' अर्जुन ने उस ब्राह्मण से कहा – 'महाराज ! क्या द्वारका में आपके पुत्रों की रक्षा करने वाला कोई नहीं है ? मैं आपकी संतान की रक्षा करूँगा ।' ब्राह्मण ने कहा – 'यहाँ बलरामजी, श्रीकृष्ण आदि के रहते जब मेरे बालकों की रक्षा नहीं हो पायी तो तुम क्या रक्षा करोगे ?' अर्जुन बोले – 'नहीं, मैं अर्जुन हूँ, मैं कृष्ण नहीं हूँ, मैं बलराम नहीं हूँ । मैं मृत्यु को भी जीतकर आपका बालक वापस लाऊँगा ।'

अर्जुन की बात सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक घर लौट गया और प्रसव का समय निकट आने पर अर्जुन को बताया । अर्जुन ने बाणों को अनेक प्रकार के अस्त्र-मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रसव गृह को चारों ओर से घेर लिया, इस प्रकार उन्होंने सूतिका गृह के चारों ओर बाणों का एक पिंजड़ा सा बना दिया । अबकी बार गर्भ से शिशु पैदा हुआ तो वह शरीर सहित ही आकाश में अन्तर्धान हो गया । अब तो वह ब्राह्मण अर्जुन को गाली देने लगा । 'धिक्कार है अर्जुन को, अपने मुँह अपनी प्रशंसा करने वाले अर्जुन के धनुष को धिक्कार है ।' जब वह ब्राह्मण अर्जुन की बहुत निन्दा करने लगा तब अर्जुन योगबल से यमपुरी में गये, वहाँ उन्हें ब्राह्मण का बालक नहीं मिला । इसके बाद वे इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि की पुरियों में गये । अतलादि नीचे के लोकों में गये परन्तु कहीं भी वह बालक नहीं मिला । अपनी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर 'अर्जुन' अग्नि में प्रवेश करने चले तो भगवान् ने उन्हें रोक लिया और उन्हें समझा-बुझाकर अपने दिव्य रथ पर सवार होकर अर्जुन के साथ पश्चिम दिशा की ओर गये । सात द्वीप, सात समुद्र और लोकालोक पर्वत को लाँघकर उन्होंने घोर अंधकार में प्रवेश किया । उस समय भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र को आगे कर दिया । अंधकार को पार करने के बाद उन्हें समुद्र मिला । उस समुद्र में एक भवन था । उस भवन में शेषनागजी की शैय्या पर विराजमान आठ भुजाओं वाले नारायण भगवान् का उन्हें दर्शन हुआ ।

अब यह प्रसंग थोड़ा जटिल है और समझने योग्य है । आचार्यों ने बताया है कि भगवान् अर्जुन को लेकर कहाँ गये थे ? ब्रह्मलोक तक तो माया है । कई आचार्यों ने मृत्युञ्जय तन्त्र का प्रमाण दिया है –

ब्रह्माण्डस्योर्द्धवतो देवि ब्रह्मणः सदनं महत् ।
तदूर्द्धवं देवि विष्णूनां तदूर्द्धवं रुद्ररूपिणाम् ॥

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी)

ब्रह्मलोक या सत्यलोक के ऊपर वैकुण्ठ लोक है । उसके ऊपर अहङ्कारावर्णस्थ रुद्र लोक है, उसके ऊपर महाविष्णु का लोक है, जो महत्तत्त्वावर्णस्थ है, उसके आगे प्रकृत्यावरणस्थ महादेवी का लोक है, उसके ऊपर ब्रह्मपीयूषाख्य कारणार्णव है, उसके ऊपर महाकाल परव्योमस्थ महावैकुण्ठनाथ हैं, यही है महाकाल का भवन; यहीं पर भगवान् कृष्ण अर्जुन को ले गये । वहाँ जाकर उन दोनों ने महावैकुण्ठनाथ भगवान् को प्रणाम किया । अर्जुन तो उनके दर्शन से घबरा गये । उन दोनों से महाविष्णु ने कहा – 'तुम दोनों को देखने के लिए ही मैंने ब्राह्मण के बालक अपने पास मँगवा लिए थे ।'

अब यहाँ समझने की बात है कि महाविराट महाविष्णु को भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की क्या आवश्यकता पड़ी ? उन्होंने कहा – **युवयोर्दिदृक्षुणा** – (श्रीभागवतजी - १०/८९/५९) – 'मुझे तुमको देखने की इच्छा हुई, इसलिए मैं ब्राह्मण के बालकों को यहाँ ले आया ।' कृष्ण का रूप ही ऐसा है कि उसको सब देखना चाहते हैं । स्वयं श्रीकृष्ण तक अपने रूप को देखकर विस्मित हो जाते थे ।

विस्मापनं स्वस्थ च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् –

(श्रीभागवतजी - ३/२/१२)

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शिक्षा देने के लिए महाविष्णु को प्रणाम किया कि कोई ऋषि आये, देवता आये तो उसको प्रणाम करना चाहिए । इसके बाद महाविष्णु श्रीकृष्ण से बोले कि संसार में आपका कार्य अब पूरा हो गया है । **भूयस्त्वरयेतमन्ति मे** – (श्रीभागवत - १०/८९/५९) **इतमन्ति मे** – इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे पास आओ । **'त्वरयेतम्'** का अर्थ है 'जल्दी करो' अर्थात् अब पृथ्वी पर आपकी लीला का अंतिम समय आ गया है ।

धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् – (श्रीभागवतजी - १०/८९/६०) लोकसंग्रह के लिये जितने लोगों ने धर्म का आचरण किया, आप उन सबसे श्रेष्ठ हैं ।

महाविराट महाविष्णु ने जब इस प्रकार भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की तो उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ द्वारका में ब्राह्मण के बालकों को लेकर लौट आये तथा उन बालकों को उनके पिता को सौंप दिया । अर्जुन ने ऐसा अनुभव किया कि जीवों में जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्ण की ही कृपा है ।

भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने नर-नारायण को अपनी विभूति माना है ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरे बड़े भाई बलरामजी नित्य धाम को गमन कर गये तो वे एक पीपल के पेड़ के नीचे जाकर चुपचाप बैठ गये । उस समय वहाँ जरा नामक एक बहेलिया आया । उसे दूर से भगवान् का लाल-लाल तलवा हरिन के मुख के समान प्रतीत हुआ, उसने उसे हिरन ही समझकर अपने बाण से बींध दिया । जब वह पास आया और देखा कि ये तो भगवान् हैं तब तो वह भयभीत हो गया और प्रभु से क्षमा माँगने लगा । भगवान् ने उसे अभयदान देते हुए स्वर्गलोक को भेज दिया । भगवान् का सारथि दारुक उनका पता लगाता हुआ उनके पास पहुँच गया । भगवान् ने उससे कहा – 'दारुक ! तुम द्वारका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियों के संहार, भैया बलरामजी की परम गति तथा मेरे स्वधाम गमन की बात कहो । अर्जुन से मिलकर उनसे कहना कि मेरे माता-पिता और पत्नियों को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ ले जायें ।'

भगवान् का आदेश पाकर दारुक उन्हें प्रणाम करके उदास मन से द्वारका चला गया ।

इस प्रसंग में आचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है कि प्रभास क्षेत्र में सूर्यास्त के समय अरबों-खरबों की संख्या में यदुवंशियों की लड़ाई शुरू हुई तो वहाँ बहेलिया कहाँ से आ गया ? इस बात को समझो । सूर्यास्त होने पर अन्धकार हो चुका था, जहाँ अरबों-खरबों वीर लड़ाई में कट रहे थे, वहाँ बहेलिया कैसे आ गया और हिरन का शिकार कैसे करने लगा ? इसका उत्तर देते हुए आचार्यों ने बताया है कि यह सब भगवान् की माया है । इसी प्रकार अर्जुन जब श्रीकृष्ण पत्नियों को इन्द्रप्रस्थ ले जा रहे थे तो भीलों ने आकर उन्हें हरा दिया और श्रीकृष्ण पत्नियों का हरण करके ले गये । यदुवंशियों के विनाश से लेकर अर्जुन को भीलों द्वारा लूटे जाने की घटना भगवान् द्वारा रचा गया इन्द्रजाल था । यह भगवान् के विशुद्ध इन्द्रजाल की माया थी । उन्हें एक क्षण में सबको गायब करना था, नहीं तो सूर्यास्त के समय इतने अधिक यदुवंशियों का संहार कैसे हो सकता था ? महाभारत युद्ध हुआ, उसमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेना थी और वह युद्ध अट्ठारह दिनों तक चला । जबकि यदुवंशी बालकों के आचार्यों की संख्या ही खरबों से अधिक नील में थी । इतने अधिक यदुवंशियों का नाश सूर्यास्त के समय थोड़ी ही देर में कैसे हो गया ? आचार्यों ने लिखा है कि भगवान् ने अपनी माया से लीला रचकर सबको उनके लोकों में भेज दिया और अपने लिए भी माया रच दी, एक बहाना बना लिया कि बहेलिया आया और उनके चरणों को हिरन का मुख समझकर बाण चला दिया । वस्तुतः भगवान् की इस अनिर्वचनीय माया को कौन जान सकता है ? महाभारत के स्वर्ग पर्व में वर्णन आता है कि महाभारत के जितने भी कर्ण आदि योद्धा थे, वे मरकर पुनः अपने परिवार वालों के पास आये और एक रात उनके साथ रुके । ये सब भगवान् की माया है । वस्तुतः भगवान् के पार्षदों की मृत्यु नहीं होती है । यह तो एक जादू सा हुआ कि वे पृथ्वी पर आये और अपना कार्य समाप्त कर भगवद्धाम को चले गये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की आज्ञा से दारुक के चले जाने पर ब्रह्माजी, शिव-पार्वती, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और इन्द्रादि देवगण भगवान् श्रीकृष्ण की परम धाम गमन लीला को देखने के लिए आये कि भगवान् किस प्रकार इस संसार से जाते हैं ? भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी और अन्य देवताओं को देखा ।

योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् –

(श्रीभागवतजी - ११/३१/६)

उन्होंने योगधारणा के द्वारा अपने शरीर को जलाया नहीं । किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् का शरीर जल गया । वे उसी शरीर से अपने धाम में चले गये ।

भगवान् के इस प्रकार जाने को न ब्रह्माजी देख पाए, न महादेवजी देख पाए । कोई देवता, कोई ऋषि-मुनि नहीं देख पाए ।

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/३१/८)

जब भगवान् अपने धाम में प्रवेश करने लगे तो ब्रह्मादि देवताओं को भी उनकी गति दिखाई नहीं पड़ी । ब्रह्मा-शिव आदि देव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण को अपने धाम जाते हुए हम लोग देख ही नहीं सके ।

भगवान् यदि चाहते तो अपने शरीर को सदा के लिए इस पृथ्वी पर रख सकते थे फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

इधर दारुक द्वारका आया और उसने वसुदेवजी तथा उग्रसेनजी को यदुवंशियों के विनाश और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के स्वधाम गमन के बारे में बताया । उसे सुनकर द्वारका में उपस्थित सभी लोग बहुत दुखी हुए और अत्यधिक दुःख के कारण मूर्च्छित हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर सभी लोग वहाँ पहुँचे, जहाँ यदुवंशी निष्प्राण होकर पड़े हुए थे । देवकी, वसुदेव तथा रोहिणीजी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण व बलराम को न देखकर बेहोश हो गये और उन्होंने विरह से व्यथित होकर वहीं अपने प्राण छोड़ दिए । स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के शव को लेकर चिता पर बैठकर भस्म हो गयीं । भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उनके ध्यान में मग्न होकर अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं । भगवान् की लीला में सहायिका उनकी योगमाया शक्ति ने लोकशिक्षार्थ इन पटरानियों का अग्नि प्रवेश आदि दिखाकर अन्त में उन सबका श्रीजी में सन्निवेश करा दिया ।

अर्जुन अपने सखा भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से अत्यधिक व्याकुल हो गये, फिर उन्होंने प्रभु के गीता के उपदेशों का स्मरण करके अपने मन को सँभाला । यदुवंश के मृत व्यक्तियों में, जिनको कोई पिण्ड देने वाला न था, अर्जुन ने उन सबका विधिपूर्वक श्राद्ध करवाया । भगवान् के न रहने पर समुद्र ने भगवान् श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर सारी द्वारका डुबो दी ।

.....

दधि-दानलीला

मोय दैजा दधि कौ दान गुजरिया बरसाने वारी ॥
या मारग ते नित ही निकसौ, भरी गरूर गुमान ।
दान दही कौ आज लेऊँगो, तुम सब रस की खान ।
ठाले डोलौ तुम क्यों लाला, मेंटौ कुल की कान ।
मैं तो ब्रज कौ चन्द्र छबीलौ, ठाले कैसे जान ।
बिना दान के जान न दूँगो, ये ही मेरी आन ।
सुनके मुसक्याई वह ग्वालिन, हरि कौ राख्यौ मान ।
अपने हाथन दह्यो खवायो, कर लीनी पहचान ।
बहुविधि दान दियो चित्तचोरहि, दीयो नागर पान ।
गली सांकरी रस में डूबी, कोयल गावै गान ॥

आजा आजा नंदलाल दही मीठो ॥
ऐसो मीठो कबहु न खायो, लड्डुआहू है गयो सीठो ।
बरसाने को सब कुछ मीठो, दूध दही माखन मीठो ।
पै भागन ते मिलै नंद के, करनों परै बहुत नीठो ।
ऐसी भई सब ढीठ गोपिका, ऐसोइ तू बन गयो ढीठो ।
ग्वाल ऊपर ग्वाला ठाढ़े, ठाढ़ो तू सब कै पीठो ।
तो यह पायी दही मथनियां, भजचल कहूं न परै दीठो ।
आय गई तौ लौं घरवारी, खाय भजै मारै गूंठो ॥

(बाबाश्री कृत रसिया रसेश्वरी से संकलित)

असली आध्यात्मिकता 'विशुद्ध भक्ति'

एक दिन देवहूतिजी अपने पुत्र भगवान् कपिल से बोलीं – 'हे प्रभो ! आप मुझे घोर अज्ञान के अन्धकार से पार कीजिये । आप तो नेत्र-स्वरूप हैं, मैं आपकी शरण में हूँ ।' कपिल भगवान् बोले – 'आध्यात्मिक योग से ही जीव का कल्याण होता है ।'

हम सब लोग अपने को आध्यात्मिक समझते हैं किन्तु आध्यात्मिक किसे कहते हैं, इसे समझो ।

भगवान् कपिल ने कहा कि अध्यात्म योग में मनुष्य का प्रवेश तभी होता है, जब दुःख और सुख से मनुष्य की अत्यन्त उपरति हो जाती है । न तो उसे दुःख व्यापता है और न सुख में प्रसन्नता होती है, तब उसका अध्यात्मयोग में प्रवेश होता है । बात बनाना तो अलग है लेकिन अगर किसी के घर में मौत हो जाए या कोई रोग हो जाए अथवा धन का गम्भीर घाटा हो जाए तो सबके चेहरे उदास हो जायेंगे । अतः अभी तो हमलोगों का आध्यात्मिक योग में प्रवेश ही नहीं हुआ है, शुरुआत ही अभी नहीं हुई है और भगवान् कपिल ने जो अपने उपदेश का सबसे पहला श्लोक बोला, वह यही बोला कि यदि तुम्हें आध्यात्मिक योग में प्रवेश पाना है तो उसके लिए पहली आवश्यकता यह है कि तुम सुख–दुःख से ऊपर उठ जाओ । ईश्वर प्रेम भी इसी को कहते हैं कि जो कुछ भी हमारा प्यारा कर रहा है, हम उसी में सुखी रहें किन्तु संसार के लोग तो जरा–जरा सी बात पर दुखी होते रहते हैं कि चार पैसे का घाटा हो गया, बेटा–बेटी बीमार हो गए ।

कपिल भगवान् ने कहा –

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५ /१३)

भगवान् ने यह पहला ज्ञान अपनी माँ को दिया । इसके बाद भगवान् बोले कि यह चित्त ही बन्धन कराता है और चित्त ही मुक्ति कराता है । कोई दूसरा नहीं कराता है ।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५/१५)

'चेतः' अर्थात् चित्त; 'चित्त' किसे कहते हैं, इसे समझो । हम लोगों का चित्त बन्धन क्यों करा रहा है ? चित्त की परिभाषा है– **'चिनोति आत्मनि मलं इति चेतः'** हम लोगों का चित्त केवल गंदगी, मल–मूत्र का भोग इकट्ठा कर रहा है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं करता । जबकि जो महापुरुषों का चित्त होता है, वह क्या करता है –**'चिनोति आत्मनि भगवत्तत्वम्'** उनका चित्त श्रीकृष्ण को इकट्ठा करता है । **'चिनोति आत्मनि श्रीकृष्ण तत्त्वम्'** – 'तत्त्वम्' से अभिप्राय है - श्रीकृष्ण-तत्त्व । इस हिसाब से महापुरुषों का चित्त भी चित्त है और हमारा चित्त भी चित्त है लेकिन इकट्ठा करने वाली जो वस्तु है, वह अलग-अलग है । कोई हीरा इकट्ठा कर रहा है और कोई मल-मूत्र इकट्ठा कर रहा है । इसे चित्त कहते हैं, यही मन है । जो बात देवहूतिजी ने कही थी, उसी सिद्धान्त को '३/२५/२०' में भगवान् दोहरा रहे हैं –

प्रसङ्गमजरं पाशं आत्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारं अपावृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५/२०)

आसक्ति 'आत्मा' का अजर बन्धन है, ऐसा विवेकीजन मानते हैं । जैसे – स्त्री-पुरुष की परस्पर कामासक्ति होती है, वह बन्धन है; किन्तु वही आसक्ति यदि महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है ।

महापुरुष भी कर्दमजी जैसा होना चाहिए, गड़बड़ी तभी होती है, जब हम जैसे लोग अपने मल-मूत्र के शरीर को घोषित करते हैं कि हम महापुरुष हैं । आसुरी भाव में हम लोग जो महापुरुष होने का ढोंग करते हैं, गड़बड़ी वहीं से शुरू होती है । यह बात खोल के इसलिए समझाई जा रही है ताकि हम लोग महापुरुषों की महिमा को जानें, दुरुपयोग के लिए नहीं ऐसा कहा जा रहा है । इस बात को लोग छिपाते हैं । यह छिपाने की बात नहीं है, महापुरुषों की महिमा हम लोग नहीं जानेंगे तो भक्ति कैसे जानेंगे ? **राम ते अधिक राम कर दासा** – महापुरुष की महिमा तो तुम्हें जानना ही होगा, इसे छिपाने से क्या होगा ? आगे कपिल भगवान् कहते हैं कि साधु कैसे होते हैं ?

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/२१)

वे अजातशत्रु होते हैं, शान्त होते हैं । तीन गुण भौतिक बताये तथा चार गुण आध्यात्मिक बताये । आध्यात्मिक भी कई गुण बताये हैं । इन गुणों की संख्या वल्लभाचार्यजी ने अपनी भागवत की टीका में बहुत अच्छी लिखी है ।

भगवान् कहते हैं कि महापुरुष लोग हर समय मेरी कथा को सुनते और कहते हैं, वे कृष्ण संग से इतर (बाहर) नहीं जाते हैं । जो व्यक्ति कृष्ण संग से इतर जाएगा, वह तो धोखा खा जाएगा, चाहे कोई आचार्य हो चाहे गोस्वामी हो, कृष्ण चर्चा से जो इतर है, उसका तो पतन निश्चित है । अब आगे भगवान् भक्ति का लक्षण बता रहे हैं ।

देवानां गुणलिङ्गानां आनुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/३२)

यहाँ देवानां का अर्थ है इन्द्रियाँ । यद्यपि देव शब्द का अर्थ होता है देवता । हमारी जो ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हैं, ये बिना प्रयास के कृष्ण में लगी रहें, इसी का नाम भक्ति है । हमारा जो मन है तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जैसे आँख से देखना, कान से सुनना, जीभ से बिना प्रयास के ही 'भगवन्नाम' निकलता रहे, जैसे गोपियों के बारे में लिखा है –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो–क्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(श्रीभागवतजी १०/४४/१५)

हर कार्य को करते समय, बिना प्रयत्न के ही उनकी वाणी से हर समय कृष्ण गुणगान होता रहता था । हम लोगों को तो अभी भक्ति में मन लगाना पड़ता है कि इतनी देर माला करेंगे, इतनी देर कीर्तन करेंगे किन्तु ऐसा अभ्यास पड़ जाना चाहिये कि अपने आप जीभ सदा भगवन्नाम लेती रहे । कर्मेन्द्रियाँ भी अपने आप ही कृष्ण में लगें, मन भी अपने आप कृष्ण में लगे, उसका नाम भक्ति है यानी लगाना न पड़े, स्वयं ही बिना प्रयास के कृष्ण में लगा रहे, उसका नाम भक्ति है । वल्लभाचार्यजी ने 'देवानाम्' का बड़ा सुन्दर अर्थ किया है । वे लिखते हैं कि जो इन्द्रियाँ कृष्ण में लगती हैं, वे तो देव हैं, वहाँ उन्होंने उपनिषदों का भी प्रमाण दिया है । जो इन्द्रियाँ कृष्ण में नहीं लग रही हैं, वे असुर हैं । इसीलिए यहाँ पर देवानां लिखा है । ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है और यह आचार्यों ने लिखा है कि आँख से दर्शन करेंगे, कान से कथा सुनेंगे, वाणी से कीर्तन करेंगे, हाथ से सेवा करेंगे अर्थात् सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तो कृष्ण भक्ति में लग जायेंगी किन्तु मल–मूत्र की इन्द्रिय भगवान् की सेवा में कैसे लगेगी ? आचार्य कहते हैं कि मल–मूत्र की इन्द्रिय भी कृष्ण में लगेगी, कैसे लगेगी ? विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिखा है –

मलमूत्रपरित्यागाच्चित्तस्वास्थ्यं यतो भवेत् ।
अतः पायुरुपस्थश्च तदाराधनसाधनम् इति

मल–मूत्र की इन्द्रिय यदि गड़बड़ करती है तो शरीर का स्वास्थ्य खराब हो जाता है । यदि शौच न हो तो दूषित वायु निकलती रहेगी और भगवान् में भी मन नहीं लगेगा । इसलिए मल–मूत्र की इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, उपस्थ इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, नहीं तो अधिक भोग के कारण कृष्ण से विमुख हो जाओगे, प्रह्लादजी ने यह बात कही है । अतः इन्द्रियों का संयम करना ही, इन्हें कृष्ण में लगाना है । ३/२५/३२ में सत्त्व का अर्थ मन है । वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि दो प्रकार की इन्द्रियाँ है – देवरूपाणि, असुररूपाणि – **'एकानि देवरूपाणि एकान्यसुररूपाणि ।'** 'भगवद्भक्ति' में लगने वाली इन्द्रियाँ देवरूपाणि हैं । भक्ति कैसी होनी चाहिए, अनिमित्त निष्काम होनी चाहिए । किसी मतलब से भक्ति नहीं करनी चाहिए ।

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।

(श्रीभागवतजी ३/२५/३३)

ऐसी 'भक्ति' मुक्ति से भी बड़ी है । मुक्ति से कैसे बड़ी है ? इस तरह बड़ी है कि क्या भगवान् कभी किसी ब्रह्मज्ञानी का रथ हाँकने गए हैं, केवल अर्जुन का ही रथ उन्होंने हाँका था । क्या भगवान् किसी ब्रह्मज्ञानी की सेवा करने गये हैं किन्तु ब्रज में गोपी कहती है – 'कन्हैया, मेरी गोबर की हेल उँचा जा, गगरी उँचवा जा, मैं तुझे माखन का लौंदा दूँगी ।' कन्हैया पूछते हैं कि कितने लौंदा देगी ? गोपी कहती है जितनी हेल उँचवायेगा, उतना लौंदा दूँगी । कन्हैया ने पूछा कि मुझे कैसे पता पड़ेगा कि कितनी हेल

उँचवायी । गोपी बोली – 'जितनी हेल उँचवायेगा, उतना गोबर का ठप्पा तेरे गाल पर लगा दूँगी ।' कृष्ण बोले – 'ठीक है, शर्त मंजूर है ।' गोपी ने कहा कि बेईमानी नहीं होनी चाहिए । अब कन्हैया ने गोबर की हेल उँचवाई तो गोपी ने एक ठप्पा उनके गाल पर लगा दिया और बोली कि अब तुझे एक लौंदा मिल जाएगा । जब दो–चार हेल हो गयी तो कन्हैया ने कुछ बेईमानी की और एक–दो ठप्पा गाल पर अपनी ओर से अधिक लगा लिए ताकि माखन ज्यादा मिल जाए । गोपी ने देखा तो बोली – 'लाला, बेईमानी करता है, अब एक भी लौंदा नहीं मिलेगा, मैंने तो छः (६) हेल गिन रखे हैं और तूने तीन अपनी ओर से बढ़ा लिए ।' अब श्रीकृष्ण इस तरह क्या किसी ब्रह्मज्ञानी की दासता कर सकते हैं ? ग्वाललीला में कृष्ण श्रीदामा को अपने कंधे पर बिठाकर ले जाते हैं, क्या कभी किसी ब्रह्मज्ञानी को भगवान् ने अपने कंधे पर बिठाया है । इसीलिए कपिल भगवान् कहते हैं कि भक्ति मुक्ति से भी बड़ी है । मेरे भक्त आपस में मिलकर दिन–रात मेरे रूप की, मेरी लीला की चर्चा करते हैं, इसलिए बिना चाहे ही भक्ति उनको परम पद दे देती है, मुक्ति उनको अपने आप मिल जाती है । **अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ।** (३/२५/३७) सत्य आदि लोक की विभूति भी उन्हें मिल जाती है । मेरे वैष्णव धाम का ऐश्वर्य भी उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है ।

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः । काल मेरे भक्तों को नहीं चाट सकता है । वे काल के ऊपर उठ जाते हैं । जो भगवान् की भक्ति करता है, काल उसका कुछ नहीं कर सकता, कैसे भक्त ? जिनका मैं ही सब कुछ हूँ । **येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥** (श्रीभागवतजी ३/२५/३८)

मैं ही जिनका प्रिय हूँ (जैसे लक्ष्मीजी के प्रिय हैं भगवान्) । मैं ही जिनका आत्मा हूँ (जैसे सनकादिक मुनियों की आत्मा हैं भगवान्)। मैं ही जिनका बेटा हूँ, (जैसे यशोदाजी के बेटा हैं भगवान्), मैं ही सखा हूँ, (जैसे अर्जुनजी के सखा हैं भगवान्), मैं ही पिता हूँ (प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण हैं), मैं ही सुहृद हूँ (जैसे पाण्डवों के सुहृद थे), मैं ही भक्तों का दैव हूँ, मैं उनका सब कुछ हूँ, मैं ही गुरु हूँ; ऐसे भक्तों का काल कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।

विसृज्य सर्वान् अन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।
भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/४०)

जो भक्त मेरे लिए अपना घर, धन, पशु तथा अन्य सभी वस्तुओं को छोड़ देते हैं, उन्हें मैं मृत्युरूप संसार सागर से पार कर देता हूँ । भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ना पड़ता है तभी तो चैतन्य महाप्रभु ने कहा है– **'बिना सर्वत्यागं न हि भवति भजनं यदुपतेः ।'**

सर्वत्याग के बिना कृष्ण भजन नहीं हो सकता है । भगवान् कहते हैं कि जो मेरे लिए सब कुछ छोड़ देता है, **तान्मृत्योरतिपारये** – उसे मैं अपने कंधे पर उठाकर मृत्यु के पार ले जाता हूँ, **अतिपारये** – पार ही नहीं अतिपार अर्थात् बड़े लाड़–प्यार से ले जाता हूँ ।

गोपिकाओं का कृष्णप्रेम

कैसे नाहिं करूँ जब दधि माँगै,
अँखियन में भर-भर पानी ॥

प्यारो वह नंद जू को छैया, कर जोर परै मेरे पैंया,
कैसे मुख फेरूँ जब आशा सों देखै मोकों मनमानी ।
मैं चतुर नार करी चतुराई, घूँघट ते देखत पछताई,
कैसे आँख चुराऊँ वाते है गई नई-नई पहचानी ।
बचके मैं चली किनारो देय, चुनरी पकरी मेरो नाम लेय,
कैसे कानन मूंदूं कहै मोते जब प्यारी वह दधि दानी ।
वह छाय गयो मेरे हियरे, बस रह्यो वो नैनन में मेरे,
कैसे रोकूँ जागत सोवत रटती, कृष्ण नाम यह बानी ।
कोई मोते लै लेओ री गोपाला ॥
दधि को नाम न लेवै ग्वालिन, टेरत मदन गोपाला ।
जिनको नाम श्याम सुन्दर है, है यशुदा के लाला ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, नटखट नैन विशाला ।
बनी बावरी कुंज गलिन में, ढूंढत ब्रज हरि ग्वाला ॥

(रसिया रसेश्वरी)

अनुक्रमणिका

विषय- सूची

पृष्ठ- संख्या

१ परम संयमी श्रीकृष्णभक्त 'अर्जुन' ०५
२ मोह-विभंजनी 'श्रीगीताजी' ०८
३ गौरवशालिनी 'भारतीय संस्कृति' १२
४ कामना ही कृपणता १४
५ सच्ची शान्ति 'प्रसन्नता' १६
६ श्रीसेवाराधना ही दिव्य तप १७
७ श्रीकृष्ण प्रेमियों का अन्तरंग भाव २०
८ ब्रजवासियों की विरह-दशा २४
९ गोपियों के सत्संग से बने ब्रजभावुक 'उद्धवजी'.....२६
१० अर्जुन का अहं शमन २९
११ असली आध्यात्मिकता 'विशुद्ध भक्ति'.....३२

|| राधे किशोरी दया करो ||
हमसे दीन न कोई जग में,
बान दया की तनक ढरो |
सदा ढरी दीनन पै श्यामा,
यह विश्वास जो मनहि खरो |
विषम विषयविष ज्वालमाल में,
विविध ताप तापनि जु जरो |
दीनन हित अवतरी जगत में,
दीनपालिनी हिय विचरो |
दास तुम्हारो आस और की,
हरो विमुख गति को झगरो |
कबहूँ तो करुणा करोगी श्यामा,
यही आस ते द्वार पर्‌यो | –

पूज्य श्रीबाबामहाराज कृत नित्य स्तुति-पद

संरक्षक- **श्रीराधामानबिहारीलाल**
प्रकाशक – **राधाकान्त शास्त्री, मानमंदिर सेवा संस्थान, गह्वरवन, बरसाना, मथुरा (उ.प्र.)**
mob. **राधाकांत शास्त्री** 9927338666
ब्रजकिशोरदास.....6396322922
(Website :www.maanmandir.org)
(E-mail :info@maanmandir.org)

परम पूज्यश्री रमेश बाबा महाराज जी द्वारा सम्पूर्ण भारत को आह्वान –
"मजदूर से राष्ट्रपति और झोंपड़ी से महल तक रहने वाला प्रत्येक भारतवासी विश्वकल्याण के लिए गौ-सेवा-यज्ञ में भाग ले |"
*** योजना ***
अपनी आय से १ रुपया प्रति व्यक्ति प्रतिदिन निकालें व मासिक, त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक रूप से इकट्ठा किया हुआ सेवाद्रव्य किसी विश्वसनीय गौसेवा प्रकल्प को दान कर गौरक्षा कार्य में सहभागी बन अनन्त पुण्य का लाभ लें | हिन्दूशास्त्रों में अंशमात्र गौसेवा की भी बड़ी महिमा का वर्णन किया गया है |

श्रीमानमंदिर की वेबसाइट www.maanmandir.org के द्वारा आप प्रातःकालीन सत्संग का ७:३० से ८:३० बजे तक तथा संध्याकालीन संगीतमयी आराधना का सायं ६:३० से ८:०० बजे तक प्रतिदिन लाइव प्रसारण देख सकते हैं |

विशेष:- इस पत्रिका को स्वयं पढ़ने के बाद अधिकाधिक लोगों को पढ़ावें जिससे आप पुण्यभाक् बनें और भगवद्-कृपा के पात्र बनें | हमारे शास्त्रों में भी कहा गया है –

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपो दानानि चानघ | जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन् कलामपि || (श्रीमद्भागवत ३/७/४१)

अर्थ:- भगवत्तत्त्वके उपदेश द्वारा जीव को जन्म-मृत्यु से छुड़ाकर उसे अभय कर देने में जो पुण्य होता है, समस्त वेदों के अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादि से होनेवाला पुण्य उस पुण्य के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता |

प्रकाशकीय

उर्वशी जैसी सुन्दरी, जो स्वर्ग की सर्वोत्कृष्ट अप्सरा थी, वह यदि काममोहित होकर किसी मनुष्य तक पहुँचे और अपनी कामजनित भाव-भंगिमाओं से उस भूलोकवासी प्राणी को आकर्षित करने लगे तो वह व्यक्ति अपने को कितना सौभाग्यशाली अनुभव करेगा, परन्तु वही व्यक्ति यदि उस अप्सरा में मातृभाव दर्शन कर अपने को कृतार्थ माने तो वह कैसा अलौकिक व अनिन्द्य महापुरुष होगा ।

हम बात कर रहे हैं नारायण के नित्य सखा नरावतार अर्जुन की, जिन्होंने उर्वशी के शाप को स्वीकार कर लिया किन्तु उसके कुसंग को नहीं; ऐसे महापुरुष हमारी संस्कृति-सभ्यता के प्रेरणादायक महान व्यक्तित्व हैं । आज हमारे समाज को इन कामवासनाओं ने अन्धा बना दिया है । भला कोई अन्धा किसी अन्धे को किस प्रकार दिव्य प्रकाश तक पहुँचा सकता है ? जिनको नारायण का संग प्राप्त है, वह नर सदा-सर्वदा नारायण का ही होकर नारायण स्वरूप ही हो जाता है । सदा सत्संग ही करो, दिव्य बनो और झूठी वासनाओं में पड़कर अनन्त अन्धकार को प्राप्त नहीं हो ।काम-क्रोधादि हमारे सबसे बड़े शत्रु हैं ।

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ (श्रीगीताजी ३/३७)

राधाष्टमी (राधा जन्मोत्सव) के पावन पर्व पर हमारे गुरुदेव की प्रेरणा से इस वर्ष इस महानायक (अर्जुन) के चरित्र के माध्यम से मान मन्दिर कला अकादमी ने सभी का मार्ग दर्शन किया ।उनके नाट्य मंचन में दिखायी पड़ा कि बड़े से बड़ी विभूतियों को भी यदि कुसंग मिलता है तो उनकी बुद्धि भी सद्-असद् का विवेक खो बैठती है । भक्ति के आचार्य कहे जाने वाले भीष्म पितामह तक यह सामर्थ्य नहीं जुटा पाये कि कौरवों का विरोध कर निर्वस्त्र की जा रही द्रौपदी का सहारा बन सकें । द्रोण, कृपाचार्य सहित सभी गुरुजन सिर झुकाकर बैठे रहे ।

जीवन में संग का बड़ा महत्त्व है । सबका सहारा छोड़कर केवल कृष्णाश्रय लेने वाले पाण्डवों को ऐसे-ऐसे दिग्गज परास्त नहीं कर पाये, जिनके समुदाय में कितने ही योद्धा अमर थे । आश्रय लेना है तो अर्जुन की भाँति एकमात्र केवल श्रीहरि का ही लेना चाहिए ।एक क्षण के कुसंग ने अजामिल को महापापी बना दिया और प्रतापभानु जैसे राजा को रावण बना दिया । हमारे ऋषियों-महापुरुषों ने हमें बहुत कुछ दिया है । हम अपनी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत को बनाये रखें और प्रेरणास्पद साहित्य व महापुरुषों के आश्रय से अपने को सुरक्षित रख सकें, ऐसी हमारी कामना है ।

प्रबन्धक

राधाकान्त शास्त्री

श्रीमानमंदिर सेवा संस्थान ट्रस्ट

परम संयमी श्रीकृष्णभक्त 'अर्जुन'

अर्जुन भगवान् कृष्ण के परम भक्त और महाभारत के विशिष्ट नायक हैं । बदरिकाश्रम पर निवास करने वाले भगवान् नर-नारायण में अर्जुन को भगवान् नर का अवतार भी माना जाता है । राजा पाण्डु के पुत्र पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव कहलाये । पाण्डु की दो पत्नियाँ थीं – कुन्ती और माद्री । एक ऋषि के शाप के कारण पाण्डु सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ थे । कुन्ती को बचपन में ही दुर्वासा ऋषि की सेवा के फलस्वरूप एक मन्त्र प्राप्त हुआ था, जिसके प्रभाव से वह जिस किसी भी देवता को आवाहन करना चाहे, वह उनके सामने प्रकट होकर उनकी कामना पूर्ण करने को विवश था । अतः पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि तुम सन्तान प्राप्ति के लिए देवताओं का आवाहन करो, तब धर्मराज के संयोग से युधिष्ठिर और वायुदेव के संयोग से भीम का जन्म हुआ । इसके बाद पाण्डु को यह लालसा हुई कि मुझे एक ऐसा पुत्र प्राप्त हो, जो संसार में सर्वश्रेष्ठ हो । देवताओं में सबसे श्रेष्ठ इन्द्र ही हैं । यदि वे किसी प्रकार संतुष्ट हो जाएँ तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुत्र का दान कर सकते हैं । ऐसा विचार करके उन्होंने कुन्ती को एक वर्ष तक व्रत करने की आज्ञा दी और वे स्वयं सूर्य के सामने एक पैर से खड़े होकर बड़ी एकाग्रता के साथ उग्र तप करने लगे । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर इन्द्र प्रकट हुए और बोले – 'मैं तुम्हें एक विश्वविख्यात, ब्राह्मण, गौ और सुहृदों का सेवक तथा शत्रुओं को सन्तप्त करने वाला श्रेष्ठ पुत्र दूँगा ।' तदनन्तर पाण्डु ने कुन्ती से कहा कि मैंने देवराज इन्द्र से वर प्राप्त कर लिया है । अब तुम पुत्र के लिए उनका आवाहन करो । कुन्ती ने वैसा ही किया, तब इन्द्र प्रकट हुए और उन्होंने अर्जुन को उत्पन्न किया । अर्जुन के जन्म के समय आकाशवाणी ने अपने गम्भीर स्वर से कहा – 'कुन्ती ! यह बालक कार्तवीर्य अर्जुन और भगवान् शंकर के समान पराक्रमी तथा इन्द्र के समान अपराजित होकर तुम्हारा यश बढ़ाएगा । जैसे विष्णु ने अपनी माता अदिति को प्रसन्न किया था, वैसे ही यह तुम्हें प्रसन्न करेगा । यह बहुत से सामन्तों और राजाओं पर विजय प्राप्त करके तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा । स्वयं भगवान् रुद्र भी इसके पराक्रम से प्रसन्न होकर इसे अस्त्र दान करेंगे । यह इन्द्र की आज्ञा से निवात कवच नामक असुरों को मारेगा और सारे दिव्य अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त करेगा ।'

युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन पाण्डु की ज्येष्ठ (बड़ी) पत्नी कुन्ती के पुत्र थे तथा नकुल और सहदेव पाण्डु की छोटी पत्नी माद्री के पुत्र थे । पाण्डवों के जन्म के थोड़े समय पश्चात् ही उनके पिता पाण्डु की मृत्यु हो गयी थी । माद्री अपने पुत्रों को कुन्ती को सौंपकर अपने पति के साथ सती हो गयी थीं । कुन्ती ने ही अपने पुत्रों के साथ ही माद्री के पुत्रों का भी पालन-पोषण किया था । पाँचों पाण्डव अपनी माता कुन्ती के संरक्षण में रहा करते थे । अर्जुन कुन्ती के सबसे छोटे पुत्र थे । अर्जुन बचपन से ही बड़े ही मातृ भक्त, परम धार्मिक, सदाचारी और वीर प्रकृति के थे । ये अपने भाइयों के प्रति भी बहुत स्नेह करते थे । पाण्डु की मृत्यु के कारण अन्धे होने पर भी उनके बड़े भाई धृतराष्ट्र को हस्तिनापुर का राजा बनाया गया । इनके सौ पुत्र थे, जो कौरव कहलाये, इनके सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था । विधवा होने के कारण कुन्ती को अपने पाँचों पुत्रों के साथ धृतराष्ट्र के संरक्षण में रहना पड़ा । भीष्म पितामह नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, उन्होंने हस्तिनापुर राज्य की रक्षा का उत्तरदायित्व ले रखा था । उनकी प्रेरणा से धनुर्वेद के विशिष्ट ज्ञाता द्रोणाचार्य को पाण्डवों और कौरवों को धनुष विद्या सिखाने का कार्य सौंपा गया । द्रोणाचार्य के सभी शिष्यों में अर्जुन ही सबसे प्रमुख धनुर्धर बने । वे अपनी गुरु भक्ति के कारण गुरु द्रोणाचार्य के प्रमुख कृपापात्र और उनकी विशेष प्रीति के भाजन बने । यहाँ तक कि द्रोणाचार्य अर्जुन के विशेष गुणों के कारण अपने पुत्र अश्वत्थामा से भी अधिक स्नेह अर्जुन से करते थे । इसीलिए उन्होंने अर्जुन को धनुष विद्या का सम्पूर्ण कौशल सिखा दिया था । वीर होने के साथ ही अर्जुन बड़े ही संयमी-सदाचारी, अपनी माता एवं बड़े भाइयों के आज्ञाकारी, परम धार्मिक तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रिय सखा व उनके अनन्य भक्त थे । अर्जुन कितने बड़े कृष्ण भक्त थे, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भगवान् कृष्ण ने सृष्टि के आरम्भ

में जो गीता ज्ञान सबसे पहले सूर्यदेव को प्रदान किया था, वह कालक्रम से नष्ट हो गया था, उसको द्वापर युग के अन्त में फिर से उन्होंने अर्जुन को प्रदान किया और इसका कारण बताते हुए भगवान् ने अर्जुन से कहा –

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥

(गीता ४/३)

तू मेरा भक्त और प्रिय सखा है, इसलिए वही यह पुरातन योग आज मैंने तुझसे कहा है, क्योंकि यह बड़ा ही उत्तम रहस्य है अर्थात् गुप्त रखने योग्य विषय है ।

प्रिय सखा और भक्त होने के कारण ही भगवान् के द्वारा उन्हें परम गोपनीय गीता का ज्ञान प्रदान किया गया और उनके माध्यम से ही गीता का यह सर्वकल्याणकारी सन्देश कलिकाल में सारी मानव जाति को प्राप्त हो सका ।

धृतराष्ट्र का सबसे बड़ा पुत्र दुर्योधन पाण्डवों से अकारण ही बहुत द्वेष किया करता था । उसने पाण्डवों के प्रति बहुत अन्याय किया । अन्धे धृतराष्ट्र पुत्र मोह के कारण उसकी किसी बात का विरोध नहीं करते और वह जैसा चाहता, अपनी दुष्ट बुद्धि के अनुसार पाण्डवों के अहित के लिए वैसा ही किया करता था ।

धनुष विद्या सिखाने के बाद एक दिन द्रोणाचार्य ने अपने शिष्यों की परीक्षा ली । उन्होंने एक बड़े से वृक्ष की डाल पर एक पक्षी की प्रतिमा को रख दिया, फिर कौरव-पाण्डव आदि अपने शिष्यों को बुलाकर उनसे कहा – 'देखो, इस पेड़ की डाल पर रखे पक्षी की आँख पर तुम लोगों को अपने बाण से निशाना लगाना है ।' इसके बाद उन्होंने एक-एक कर सभी शिष्यों को पास बुलाकर उनसे पूछा कि तुम्हें पेड़ की डाल पर क्या दिखायी दे रहा है । सबसे पहले उन्होंने युधिष्ठिर से पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी देता है ? युधिष्ठिर बोले – 'गुरुदेव ! मुझे यह वृक्ष, उसकी डाल पर पक्षी तथा आप और यहाँ स्थित सभी विद्यार्थी दिखायी दे रहे हैं ।' युधिष्ठिर की बात सुनकर द्रोणाचार्य ने उनको वहाँ से हटा दिया और अन्य विद्यार्थियों को बुलाया और वही प्रश्न किया । सभी विद्यार्थी यही कहते कि मुझे पेड़, पक्षी और आप दिखायी देते हैं किन्तु जब द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर उनसे पूछा कि तुम्हें क्या दिखायी दे रहा है तो उन्होंने कहा – 'गुरुदेव ! मुझे तो पक्षी की आँख के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखायी देता है ।' अर्जुन की बात सुनकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुए और बोले – 'हाँ ! अब तुम पक्षी की आँख पर निशाना लगाओ ।' गुरु आज्ञा से फिर अर्जुन ने पक्षी की आँख पर अपने बाण से निशाना लगा दिया ।

इस प्रकार देखा जाए तो द्रोणाचार्य के सभी शिष्यों में धनुष विद्या में अर्जुन के समान कुशल धनुर्धर कोई और नहीं था । इसी प्रकार वे इन्द्रिय भोगों से विरक्त कितने अधिक संयमी थे, इसका प्रमाण मिलता है, जब महाभारत युद्ध के पहले अर्जुन को अस्त्र विद्या की शिक्षा के लिए इन्द्र की आज्ञा से स्वर्ग में जाना पड़ा था । वहाँ इन्द्र ने अर्जुन को इतना अधिक सम्मान दिया कि उन्हें अपने सिंहासन पर अपने साथ ही बैठाया । एक दिन अर्जुन इन्द्र के साथ उनके सिंहासन पर बैठकर गन्धर्वों और अप्सराओं द्वारा प्रस्तुत संगीत का कार्यक्रम देख रहे थे । उस समय उर्वशी अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन कर रही थी । अर्जुन भी संगीतशास्त्र (गान और नृत्य कला) के मर्मज्ञ थे । वे उर्वशी के उत्कृष्ट नृत्य को मुग्ध दृष्टि से देख रहे थे । उर्वशी स्वर्ग की अप्सराओं में सर्वप्रमुख और सर्वोत्कृष्ट सुन्दरी है, उससे मिलने के लिए बड़े-बड़े देवता लालायित रहते हैं । जब अर्जुन उर्वशी की ओर दृष्टि गड़ाकर देख रहे थे तो उसने सोचा कि मैं स्वर्ग की सबसे अधिक सुन्दर अप्सरा हूँ, इसलिए अर्जुन मेरे रूप पर आसक्त हो गये हैं और मुझसे मिलना चाहते हैं । स्वयं अर्जुन भी इतने सुन्दर थे कि उर्वशी भी उनके प्रति कामासक्त होकर उनसे मिलन की कामना करने लगी । इधर जब इन्द्र ने देखा कि अर्जुन एकटक उर्वशी की ओर देख रहे हैं तो उन्होंने भी यही समझा कि अर्जुन उर्वशी के रूप के प्रति आसक्त है, अतः अर्जुन का उर्वशी से मिलन होना चाहिए । इन्द्र ने उर्वशी को बुलाकर उससे कहा कि अर्जुन तुम्हारे रूप के प्रति आसक्त है, अतः तुम अर्जुन के निवास स्थल पर जाकर उसे सुखी करो । उर्वशी तो पहले से ही अर्जुन के प्रति आसक्त होकर उनसे मिलन के लिए आतुर हो रही थी और जब इन्द्र की आज्ञा हो गयी तब तो वह सुन्दर श्रृंगार से सुसज्जित होकर रात्रि के समय स्वर्ग में स्थित अर्जुन के

निवास स्थल पर पहुँची । उर्वशी को देखकर अर्जुन ने उसे प्रणाम किया और उसके आने का कारण पूछा । उर्वशी ने कहा कि तुम नृत्य के समय मुझे अपलक दृष्टि से देख रहे थे, तुम मेरे प्रति कामासक्त हो गये थे, इसलिए तुम्हारी कामना की पूर्ति के लिए देवराज इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है । उर्वशी की बात सुनकर अर्जुन ने अपने कान बन्द कर लिए और विनम्रतापूर्वक कहा – 'ये आप क्या कह रही हैं ? मैं नृत्य करते समय आपके रूप के प्रति कामासक्त होकर आपको नहीं देख रहा था, अपितु मैं स्वयं गान और नृत्य कला का बड़ा प्रेमी हूँ, अतः उस समय मैं आपकी अद्भुत नृत्य कला के प्रति मुग्ध होकर आपके नृत्य को देख रहा था, साथ ही मैं यह भी सोच रहा था कि आप हमारे वंश के पूर्वजों की माता हैं, इसलिए मैं तो आपको अपनी माता के भाव से आदरपूर्वक दृष्टि से देख रहा था । आपके प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का कोई काम भाव नहीं है ।' अर्जुन की बात सुनकर उर्वशी रुष्ट होकर बोली – 'अर्जुन ! मैं स्वर्ग की सर्वाधिक सुन्दरी अप्सरा हूँ । बड़े-बड़े देवता, यहाँ तक कि स्वयं देवराज इन्द्र भी मुझसे मिलने के लिए लालायित रहते हैं । मैं इन्द्र की आज्ञा से तुम्हें तृप्त करने के लिए आई हूँ, इसलिये मेरे प्रस्ताव को स्वीकार करो ।' अर्जुन उर्वशी के काम प्रस्ताव को सुनकर लज्जित हो गये और उन्होंने उर्वशी से कहा कि आप मेरी माता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ । क्या कभी माता और पुत्र के मध्य कामभोग सम्भव है ? ऐसा कभी नहीं हो सकता, मैं कभी आपके साथ भोग नहीं कर सकता हूँ । अर्जुन की बात सुनकर कुपित होकर उर्वशी ने कहा – 'यह स्वर्ग है और हम अप्सराओं का सृजन स्वर्ग में आने वाले देवरूप पुरुषों की काम तृप्ति के लिए ही हुआ है । स्वर्ग में माँ-बेटे का कोई सम्बन्ध नहीं होता है । मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ, तुम मेरे पुत्र नहीं हो । इन्द्र की आज्ञा से मैं तुम्हारे पास आई हूँ, यदि तुम मेरे साथ रमण नहीं करोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूँगी और तुम अपने पुरुषत्व से च्युत होकर नपुंसक बन जाओगे ।' उर्वशी के शाप देने की बात सुनकर भी अर्जुन अपने धर्म से विचलित नहीं हुए और उन्होंने निर्भीकता के साथ उर्वशी से कहा – 'आप मेरी पूज्या माँ हैं और मैं आपका पुत्र हूँ, मेरा आपके साथ कामभोग का सम्बन्ध कदापि नहीं हो सकता, भले ही आप मुझे शाप देकर नपुंसक बना दें, यह मुझे स्वीकार है किन्तु अधर्म का मार्ग मैं कभी नहीं ग्रहण कर सकता हूँ ।' अर्जुन के पूर्ण निष्कामता भरे सत्य वचन सुनकर उर्वशी खिसियाकर वहाँ से चली गयी । उर्वशी एक ऐसी अप्सरा थी, जिसको देखकर देवता तो क्या बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तक का मन काममय हो जाता था और वह स्वयं अर्जुन के प्रति कामासक्त होकर उनके पास गयी थी और उनसे भोग की याचना कर रही थी परन्तु धन्य हैं अर्जुन के सुदृढ़ संयम को कि नपुंसक बनने का शाप स्वीकार कर लिया किन्तु उर्वशी के साथ भोग करना स्वीकार नहीं किया ।

.....

सतत् संयमित जीवन से ही हमारा श्रीइष्ट-प्रेम अनुदिन (निरन्तर) बढ़ता है, जिससे विशुद्ध भक्तिमय सुगन्ध जन-जन में सहज ही फैलने लगती है ।

गौ-सेवकों की जिज्ञासा पर माताजी गौशाला का AccOunt number दिया जा रहा है –

SHRI MATAJI GAUSHALA,
GAHVARVAN,BARSANA, MATHURA
Bank – Axis Bank Ltd ,
A/C – 915010000494364
IFSC – UTIB0001058 BRANCH – KOSI KALAN,
MOB. NO. - 9927916699

मोह-विभंजनी 'श्रीगीताजी'

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

(गीतामाहात्म्य ६)

समस्त उपनिषद गायें हैं और 'गोपालकृष्ण' गोपालन और गोदोहन करने वाले ग्वारिया हैं, उन्होंने अर्जुन को बछड़ा बनाकर गीता रूपी अमृत का दोहन कर अर्जुन के माध्यम से सम्पूर्ण जगत को गीतामृत का पान कराया । गीता की महिमा अवर्णनीय है, यह समस्त वेद-उपनिषदों का सार है । गीता को मोह-विभंजनी कहा गया है क्योंकि यह मनुष्य के मोह का समूल विनाश कर देती है । कुरुक्षेत्र के रणांगण में मोहग्रसित अर्जुन के मोह का नाश भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा उपदिष्ट गीतामृत का पान करने से ही हुआ । इसलिए कोई भी हो, गृहस्थ अथवा विरक्त, जिसको किसी भी प्रकार का मोह है, गीता के द्वारा उसका विनाश हो जाता है । गीता की प्राप्ति श्रीकृष्ण-कृपा से ही होती है । पद्मपुराण में गीता के प्रत्येक अध्याय के माहात्म्य से सम्बंधित सच्ची कथाओं का सविस्तार उल्लेख किया गया है कि गीता के केवल पाठ करने मात्र से अनेक चमत्कार (लौकिक व पारलौकिक लाभ) हुए ? यह चमत्कार हर आदमी के साथ हो सकता है । श्रीगीताजी के श्रद्धा-भावपूर्वक पाठ, श्रवण-मनन-निदिध्यासन, कथन-वर्णन, अनुशीलन आदि करने से सहज आनन्दस्वरूप श्रीभगवान् की प्राप्ति हो जाती है ।

मोहविभंजनी गीता के द्वारा केवल अर्जुन के ही मोह का नाश नहीं हुआ, संसार में जिस किसी ने भी गीता का अध्ययन किया, उसके मोह का नाश हो गया ।

आज भी अधिकांश हिन्दू घरों में मृत्यु के समय लोग मरणासन्न व्यक्ति के कल्याण हेतु गीता पाठ करते हैं ताकि वह यह सोचकर मरे कि आत्मा अच्छेद्य है, अक्लेद्य है, इसकी मृत्यु नहीं होती है, इसको कोई मार नहीं सकता, शस्त्र इसको काट नहीं सकते, अग्नि इसको जला नहीं सकती, यह अजर-अमर है । इस विश्वास के साथ जब मनुष्य मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसे भय नहीं लगता और आत्मस्वरूप की ही प्राप्ति होती है । आत्मानुभूति यदि नहीं है परन्तु गीता के श्रवण व पाठ से विचारों में आत्मा-परमात्मा का जो अनुभव होता है, वह अवश्य ही मनुष्य को सद्गति प्रदान करेगा क्योंकि भगवान् ने गीता में यह बात स्वयं कही है –

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ (श्रीगीताजी ८/६)

अंतिम समय देह-त्याग करते समय मनुष्य जिस-जिस भाव का स्मरण करता है, उसी को प्राप्त करता है ।

बहुत से लोग कहते हैं कि हम गीता को समझ नहीं सके, हमें आत्मा का अनुभव नहीं हुआ । आत्मा का अनुभव चाहे हो अथवा न हो किन्तु जैसा कि भगवान् ने उपरोक्त श्लोक में कहा है कि शरीर छोड़ते समय मनुष्य जिस भाव का स्मरण करता है, उसी को प्राप्त करता है । अतः यदि मनुष्य को भगवान् का अनुभव नहीं है परन्तु अंतिम समय उनका स्मरण करता है तो उसे निश्चित ही भगवत्प्राप्ति हो जाएगी । यह श्लोक इस बात का प्रमाण है और स्वयं भगवान् ने कहा है । इसी बात को भगवान् ने आठवें अध्याय में फिर से दोहराया है ।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ (श्रीगीताजी ८/७)

सदा मेरा स्मरण करो और जब मन-बुद्धि मुझमें समर्पित हो जायेंगे तो तुम निश्चित ही मुझे प्राप्त कर लोगे ।

इसलिए गीता पढ़ने वाले को मृत्यु से भय नहीं करना चाहिए । भय इस बात का होना चाहिए कि कभी भगवान् की विस्मृति न हो । भगवान् ने यह बात गीता में बार-बार कही है कि मैं सतत् स्मरण से मिलूँगा । भगवान् की प्राप्ति हमें तभी होगी जब सदैव ही उनका स्मरण करेंगे ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥

(श्रीगीताजी ८/१४)

मनुष्य जीवन का प्रमुख उद्देश्य भगवत्प्राप्ति है परन्तु लोग प्रायः ऐसा सोचते हैं कि भगवान् का मिलना बहुत कठिन है किन्तु गीता के अनुसार भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं बल्कि अत्यंत सुलभ है । भगवान् कहते हैं कि जो सतत् मेरा स्मरण करता है, उसे मैं अति शीघ्र मिलता हूँ । जो सदैव भगवत्स्मरण करता है, समझो कि भगवान् उसको मिल गए, इसमें कोई संशय नहीं है । भगवान् ने कई जगह गीता

में इस बात को कहा है । इसलिए हमें संकीर्तनाराधन (नाम-रूप-लीला-गुणगान) व सेवाराधन करते हुए अधिक से अधिक भगवत्स्मरण करना चाहिए, इससे निश्चित ही भगवान् की प्राप्ति हो जाएगी । यह निश्चित समझो कि जो गीता पढ़कर निरन्तर भगवान् की याद करता है, उसको भगवान् मिल गये । इसलिए गीता के श्लोकों को कंठस्थ कर लेना चाहिए, उनके भावों को हृदयंगम कर लेना चाहिए, जो इसमें आलस्य करता है, वह मृत्यु की ओर जा रहा है । गीता के श्लोकों का अंतिम समय स्मरण बना रहे तो मनुष्य मृत्यु को जीत लेगा क्योंकि गीता मृत्युपाशछेदिनी है, यह अविद्या और मृत्यु का विनाश कर देती है ।

श्रीगीताजी (२/१) में संजय मोहज दयामय अर्जुन की स्थिति का वर्णन करते हैं – **संजय उवाच**

तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥

अन्वय – **"तं मधुसूदनः इदं वाक्यं उवाच ।"** उस अर्जुन से मधुसूदन ये वाक्य बोले । कैसा अर्जुन था ? **विषीदन्तम्** – जो दुःख कर रहा था । हृदय में मोहजनित वेदना को 'शोक' कहते हैं । **कृपयाविष्टम्** – कृपा से भरा हुआ था, **अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्** (अश्रुपूर्ण+आकुल+एक्षणम्)- आँसुओं से भरे हुए व्याकुल नेत्र । आँसू इतने आ गए थे कि उसकी ईक्षण 'दृष्टि' आँसुओं से आकुल 'भर गई' थी (दिखाई नहीं पड़ रहा था, इतने आँसू निकल रहे थे) । अर्जुन के मन में मोह के कारण कृपा का आवेश है, दो प्रकार की कृपा होती है – एक मोहज और एक ज्ञानज । संसार में हर माँ अपने बेटे पर दया करती है वह मोहज दया है । दया करना भी मोह (अन्धकार) है, जिससे विवेक रूपी प्रकाश चला जाता है । बच्चा मरने पर माँ रोती है, वह मोहज विलाप है, मोह के कारण रोती है । संसार में शोक और मोह दो चीजें हैं जो मनुष्य को विवेकहीन बना देते हैं । संतजन दया करते हैं ज्ञान से (संतों की कृपा से विवेक 'भक्तिमय प्रकाश' मिलता है ।) अर्जुन मोहज दया से भरा हुआ था और आँसुओं के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा था उसको, इतने आँसू थे । बाहर आँसुओं के कारण दिखाई नहीं पड़ रहा है, भीतर मोह के कारण कुछ समझ में नहीं आ रहा है, बाहर की भी दृष्टि बन्द और भीतर की भी दृष्टि बन्द । ऐसी विषम परिस्थिति सूरदासजी ने भी कही है – **सूर कहा कहै द्विविध आँधरो, बिना मोल को चेरो ।** 'हम तो दोनों प्रकार से अन्धे हैं, बाहर की आँख भी गयी, भीतर की भी गयी ।' यहाँ यह दिखाया गया है कि अर्जुन के अन्दर ऐसा मोह था कि इतने अधिक आँसुओं के आने से उसकी बाहर की भी आँख बंद है और मोहज दया से भीतर की भी आँख बंद है, ऐसी स्थिति में वह अन्दर-बाहर से अंधे (द्विविध आँधरे) हैं । 'कृपयाविष्टम्' और 'अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम्' अर्जुन के विशेषण हैं । कृपयाविष्टम् – भीतर की आँख फोड़ दिया मोह ने (शोक और मोह के द्वारा अंतःदृष्टि चली गई), अश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् - बाहरी आँख भी फूट-सी गयी तो ये वही बात हो गयी- "सूर कहा कहै द्विविध आँधरो" दोनों दृष्टि चली गयी, अर्जुन के अन्तः - बाह्य की ऐसी अवस्था में भगवान् मधुसूदन ने कहा । (**'मधुसूदन'** – श्रीकृष्ण । 'मधु' सारतत्त्व को कहते हैं, फूलों के रस से शहद बनता है जो 'सार' होता है, भौंरा उसी मधु को खाता 'सूदन करता' है तो उसको भी 'मधुसूदन' कहते हैं अथवा समस्त सारतत्त्व के सिद्धान्त को जो खाता है, भोगता है वह मधुसूदन **'कृष्ण'** ।)

श्रीभगवानुवाच

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥

श्रीभगवान् बोले – कुतः – कहाँ से, त्वा – तुमको, इदं कश्मलम् – ये मोह (मैल), विषम – असमय में (ठीक समय में नहीं), समुपस्थित - उपस्थित हुआ है । ये कैसा मैल है ? **अनार्यजुष्टम्** - आर्य – श्रेष्ठ, अनार्य – हीन लोगों से, जुष्ट – सेवित है, कीर्तिकर – नाम देने वाला, अकीर्तिकरम् – बदनामी देने वाला है, अस्वर्ग्यम् – नरक देने वाला है (स्वर्ग्य – स्वर्ग्य देने वाला, अ- नहीं) अर्थात् ये रास्ता नरक का है, बदनामी का है और नीच पुरुषों से सेवित है । ये 'अकीर्तिकर' दोनों के लिए है, गुरु-चेला दोनों के लिए है; तुम्हारी ही नहीं, हमारी भी बदनामी है । लोग क्या कहेंगे? किसी डरपोक के हिमायती बनकर आये थे कृष्ण और ठीक समय पर उसका गाण्डीव हाथ से गिर गया और हाथ काँपने लग गया । (यह प्रसंग पहले अध्याय में

वर्णित है – अर्जुन ने कहा था कि हमारे अंग ढीले हो गए हैं, हाथ-पाँव, मुख सूख रहा है, शरीर में कंप हो रहा है ।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥
सीदन्ति मम गात्राणि मुखच परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥

(श्रीगीता १/२८, २९, ३०)

गाण्डीव धनुष हाथ से गिर रहा है, शरीर में दाह हो रहा है, खड़ा नहीं रह सकता हूँ मैं, चक्कर आ रहा है ।) दोनों सेना के लोग देख रहे हैं कि अर्जुन काँप रहा है, रोंगटे खड़े हो गए हैं । ये सब चीजें अकीर्तिकर हैं, बदनामी कराने वाली हैं और नरक देने वाली हैं । क्यों बदनामी है ? ५-६ कारण बताये – (गीता १/२९, ३०) ये सब लक्षण सब लोग देख रहे हैं, जो हमारी बदनामी करायेंगे और तुम्हारी भी करायेंगे । हमारी इसलिए बदनामी होगी कि हम द्वारिकाधीश हैं और संसार की सबसे बड़ी गद्दी है द्वारिका, कभी भी यदुवंशी हारे नहीं, पीछे नहीं हटे; सारा कुल कलंकित हो जाएगा हमारा । ये जो यश है – **यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः। तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥** (श्रीगीताजी १८/७८)

'जहाँ कृष्ण व अर्जुन हैं, वहाँ श्री व विजय है ।' यह सुयश नष्ट हो रहा है क्योंकि पहले ही तुम हार गए हो, युद्ध से भाग रहे हो, अकीर्ति तो पहले ही मिल रही है । अकीर्ति से नरक भी होता है । **एक दृष्टान्त है** – दो व्यक्ति मरे और दोनों का जुलूस निकला बड़े धूम-धाम से । तो वहाँ कुछ लोग खड़े थे, उन्होंने पूछा कि कौन इसमें से नरक को गया है ? कौन स्वर्ग को गया है ? तो वहाँ एक वेश्या खड़ी थी, उसने कहा कि इसका फैसला मैं करूँगी । उस वेश्या ने जाकर के जो मनुष्य पहले मरा था, उसके पड़ोसियों से पूछा कि भाई ! ये आदमी मरा है, इसका तुमको दुःख है ? तो लोगों ने कहा कि नहीं, हम बड़े खुश हैं, यह बड़ा दुष्ट था, सबको सताता था, लड़ता-झगड़ता था । इसके बाद उसने जो दूसरा मनुष्य मरा था, उसके पड़ोसियों से पूछा –"अरे भाई ! ये आदमी मरा, इसका तुमको दुःख है ?" वे सब बोले –"बहुत ज्यादा दुःख है, बड़ा भला (बहुत अच्छा) आदमी था ।" यह सुनकर उस वेश्या ने फैसला दिया –"इस जीव की अकीर्ति है, इसलिए यह नरक को गया है । उस जीव का सुयश है, इसलिए वह स्वर्ग को गया है ।" तो **'अस्वर्ग्यम् – अकीर्तिकरम्'** का जोड़ा है । मनुष्य को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए कि अकीर्ति फैले, उससे अस्वर्ग्य (नरक) की प्राप्ति होती है । हर मनुष्य को पुण्य यश वाला होना चाहिए । रामायण में लिखा है –

"पावन जस कि पुन्य बिनु होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥" (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

एक पावन यश होता है । पावन यश भक्तों का होता है क्योंकि वे पुण्य (भक्ति) करते हैं । बिना अघ (पाप) के अज (बदनामी) नहीं होती है । **"लाभु कि किछु हरि भगति समाना । जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२) ऐसा कर्म करना चाहिये कि 'पावन यश' हमारी चर्चा से दूसरे को स्वर्ग मिल जाये । "बड़ा अच्छा आदमी था, बड़ा संयमी, सदाचारी था" ये पावन यश है और जब पावन यश नहीं होता है "अरे बड़ा बदमाश था, अच्छा हुआ मर गया" तो न भी नरक जाएगा तो नरक चला जाएगा । सबसे बड़ी हानि क्या है ? **"हानि कि जग एहि सम किछु भाई । भजिअ न रामहि नर तनु पाई ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड-११२)

भक्ति के समान कोई लाभ नहीं है । **"अघ कि पिसुनता सम कछु आना । धर्म कि दया सरिस हरिजाना ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२) चुगली, निंदा के समान कोई पाप नहीं है । दया करने के समान धर्म कुछ नहीं है । **"भव कि परहिं परमात्मा बिंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ हरिनिंदक ॥"** (रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड -११२) भगवान् का भजन करने वाले भव सागर में नहीं जाते । हरि और हरि भक्तों की निंदा करने वाले कभी सुखी नहीं होते । **"राजु कि रहइ नीति बिनु जानें । अघ कि रहहिं हरिचरित बखानें ॥ काहू सुमति कि खल सँग जामी । सुभ गति पाव कि परत्रिय गामी ॥**

(रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड - ११२)

बिना नीति जाने राज नहीं चलता । पराई स्त्री से संपर्क करने वाले को शुभ गति कभी नहीं मिलती है । दुष्ट के साथ

किसी को बुद्धि नहीं मिली आज तक । ये सब प्रमाण हैं । **अकीर्तिकरम्** और **अस्वर्गम्** का परस्पर सम्बन्ध है । पावन यश है तो अपने-आप उसकी शुभ गति होती है, नरक जाता है तो भी उसको स्वर्ग मिल जाता है ।

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥३॥

देखो, पहले श्लोक में तो भगवान् ने विषाद, जो उदासी या दुःख है इस मैल को बताया । दूसरे श्लोक में मैल आ गयी तो उसका परिणाम नरक या बदनामी (उस मैल का परिणाम) बताया । तीसरे श्लोक में कहा कि मैल का सबसे बड़ा नुकसान क्या है ? क्लैब्यं (अकर्मण्यता) । क्लीव कहते हैं नपुंसक को । नपुंसक में काम करने की शक्ति नहीं होती है । तुम क्लैव्य भाव (कर्महीनता) को प्राप्त हो गए हो, कर्मों को छोड़करके भाग रहे हो । मा - नहीं, नपुंसकता को मत, गमः - जाओ (प्राप्त हो), एतत् – यह, त्वयि - तुममें, न उपपद्यते - ठीक नहीं है, तुम्हारे जैसे महारथी में, हृदय का दुर्बल होना छुद्र नीचता है, नीच दुर्बलता को छोड़कर के खड़े हो जाओ, परन्तप - तुम तो बड़े तपस्वी हो । मैल रहेगी तो कर्म करने में वीरता नहीं आएगी और कर्म वही कर सकता है जिसका हृदय गन्दा नहीं है अर्थात् निर्मल मन में ही कर्म करने की कुशलता होती है ।

अर्जुन उवाच

कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये द्रोणं च मधुसूदन ।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥

अर्जुन ने अपनी समस्या रखी –

कथं – कैसे, अहम् – हम, भीष्मम् – भीष्म को, सङ्ख्ये– युद्ध में, **द्रोणं च** - और द्रोणाचार्य हमारे गुरु को, हे मधुसूदन ! कैसे, 'इषुभिः' बाणों से 'प्रतियोत्स्यामः' युद्ध का उत्तर देगें (युद्ध करेगें),योत्स्यामि - युद्ध करना, प्रतियोत्स्यामि - युद्ध के बदले में युद्ध करना । 'अगर वे हमला करते हैं तो भी हम कैसे हमला कर सकते हैं ? क्योंकि 'पूजार्हौ' दोनों पूजा के योग्य हैं, 'अरिसूदन' शत्रुओं को नष्ट करने वाले हे कृष्ण !'

इसमें अर्जुन ने गुरु भक्ति और पितृ भक्ति दिखाई है - 'द्रोणाचार्य' शब्द कहने से गुरु भक्ति और 'भीष्मम्' से पितृश्वरों की भक्ति । भीष्म इनके दादा थे और भीष्म की गोद में ये सब बच्चे खेले हुए थे ।

पाण्डव बचपन में भीष्म की गोद में खेलते थे, अतः भीष्म इनके बाबा लगते थे । इस तरह से भीष्म पांडवों के बाबा लगते थे, वही दादा बोले गए ('दादा' माने बाबा), तो भीष्म को पाण्डव दादा जी कहते थे । इसलिए अर्जुन भगवान् से कह रहे हैं कि मैं अपने (दादा) बाबा को कैसे मारूँ, जिनकी गोद में मैं खेलता था, जिनकी गोद में पला–बढ़ा । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा- ''कथं भीष्ममहं सङ्ख्ये'' । भीष्म को (अपने पितामह को) मैं कैसे मारूँगा ? द्रोणाचार्य को कैसे मारूँगा, इषु – बाणों से, योत्स्यामि – युद्ध करूँगा, प्रति-लड़ाई के बदले लड़ाई, मैं हमला नहीं करूँगा लेकिन युद्ध में तो ये लोग हमला करेंगे ही । दोनों पूजा के योग्य हैं, तो हे अरिसूदन ! हम कैसे इनसे युद्ध करेंगे ? इस प्रकार अर्जुन ने अपनी समस्या भगवान् के सामने रखी ।

गुरूनहत्वा हि महानुभावा-ञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।
हत्वार्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥

(श्रीगीताजी २/५)

अर्जुन ने भगवान् से पूछा कि मैं गुरुजनों का वध कैसे करूँ, कैसे गुरुजन ? जो महानुभाव हैं, साधारण गुरु नहीं हैं, महापुरुष हैं । 'महानुभावान् गुरून्' ये विशेषण हैं, जिनका एक ही भाव है । इनको अहत्वा – बिना मारे , भैक्ष्य - भिक्षा का अन्न, संसार में भोक्तुं 'खाना' ज्यादा श्रेयस्कर है, भीख माँग के खाना ज्यादा अच्छा है बड़ों को मारने की अपेक्षा क्योंकि ये जो गुरुजन हैं, ये अर्थरूप हैं, कामरूप हैं, इनको मारने का मतलब है कि अर्थ और काम सब नष्ट हो जायेंगे । इहैव – यहाँ पर, गुरुजनों को जो अर्थ, काम रूप हैं, इनको अगर मारते हैं तो जो हमारे भोग हैं, वे खून से प्रदिग्ध (भीजे हुए) माने जायेंगे और हम रुधिरप्रदिग्धान् – खून के भीगे भए (सींचे भए) भोगों को भोगेंगे, जो कि ठीक नहीं है ।

.....

हमारी जितने अंश में सच्चे संत (श्रीगुरुदेव) में शरणागति (भक्ति) होगी, उतने ही अंश में श्रीभगवान् में होगी; ये श्रीइष्ट में समर्पण का सबसे बड़ा पैमाना (मापदण्ड) है ।

.....

गौरवशालिनी 'भारतीय संस्कृति'

भारत की संस्कृति में बड़ों का सम्मान इतना अधिक है कि महाभारत में एक कथा है (महाभारत, युद्धकाण्ड में) कि एकबार युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर को बहुत घायल कर दिया था। जब अर्जुन ने सुना कि बड़े भैया ज्यादा घायल हो गए हैं तो वह उन्हें देखने के लिए लड़ाई के मैदान से चले गए क्योंकि युधिष्ठिर धर्मराज हैं, बड़े भाई हैं। जब अर्जुन उनके पास पहुँचे तो युधिष्ठिर ने पूछा –"क्या तुम कर्ण को मार आये, प्रतिज्ञा पूरी करके आये हो युद्धभूमि से ?" तो अर्जुन ने कहा –"नहीं, मैं आपको देखने आया हूँ।" तो युधिष्ठिर खीज गए और उन्होंने कहा कि धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव को, तुम बिना प्रतिज्ञा पूरी करे आये हो तो इतना सुनते ही अर्जुन ने तलवार निकालना शुरू किया, कृष्ण पास में खड़े थे, कृष्ण ने स्थिति को समझ लिया और बोले – "तलवार पर हाथ क्यों दे रहे हो ? अर्जुन ! ये क्या कर रहे हो ?" अर्जुन बोले – "मेरी प्रतिज्ञा है कि जो हमारे गाण्डीव की बुराई करेगा, मैं उसका सिर काट लूँगा।" तो भगवान् ने कहा कि अरे ! युधिष्ठिर महापुरुष हैं, इनकी हत्या करोगे ? अर्जुन बोले – "यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं करूँगा तो आग में जल जाऊँगा, यह मेरा नियम है।" तब भगवान् ने कहा कि तुम्हारी प्रतिज्ञा यह है कि जो गाण्डीव की बुराई करेगा, तुम उसका सिर काट दोगे। अगर तुम युधिष्ठिर का सिर काटते हो तो महापुरुष को मारने का महान भक्तापराध तुम्हें लगेगा जो कभी नष्ट नहीं होगा और नहीं सिर काटते हो तो तुम अपने आप को जला दोगे, यह भी ठीक नहीं है। इसलिए तुम इनको 'तू' कह दो। बड़ों को 'तू' कहने से ही उनको मारने के समान अपमान हो जाता है, इस प्रकार तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी मान ली जाएगी। ये एक बड़ी विचित्र घटना थी। इससे पता पड़ता है कि हमारी संस्कृति कितनी पूज्य है ? भगवान् के निर्देशानुसार अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा –"अरे ! तू इस तरह से बोलता है कि बिना कर्ण को मारे मैं आ गया।" जब इतना कहा तो युधिष्ठिर घायल थे, वह उठके चलने लग गये। तो भगवान् ने कहा – "युधिष्ठिर कहाँ जा रहे हो ?" युधिष्ठिर बोले – "अब मै राजपाट छोड़ दूँगा और भिक्षुक बन जाऊँगा, क्या फायदा जब छोटा भाई ही मुझसे तू कहता है, ऐसे जीवन से क्या लाभ ? क्षत्रिय को ऐसा जीवन नहीं बिताना चाहिए, यह क्षात्रधर्म के विरुद्ध है, अतः मैं अब यहाँ से चला जाऊँगा, साधु बन जाऊँगा, यहाँ नहीं रहूँगा।" भगवान् ने कहा कि तुम भी अर्जुन की तरह ऐसे नासमझ निकले, महाभारत चल रहा है, मैं तुम लोगों का हितैषी बनके आया हूँ किन्तु तुम लोग मेरे सम्मान की नहीं सोचते हो। युधिष्ठिर बोले – "मैं तो ऐसे नहीं जी सकता हूँ कि छोटा भाई मुझसे तू कहे।"

भगवान् ने कहा – "ठीक है, अर्जुन ने 'तू' क्यों कहा है, ये भी तो समझो, तुम्हारा सिर न काटना पड़े, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उसने ऐसा कहा है; ऐसा उसने मेरी आज्ञा से कहा है। इसलिए तुमको ऐसा काम नहीं करना चाहिए। मेरी आज्ञा से कहा है तो इसमें दुःख ही नहीं करना चाहिए।" इस प्रकार भगवान् ने उन दोनों को समझा बुझाकर रोका। अर्जुन भी नहीं मरे और युधिष्ठिर भी नहीं मरे।

हमारी आर्य संस्कृति में अपने से बड़ों का इतना सम्मान रखना पड़ता है, नहीं तो जीवन से कोई लाभ नहीं है। यहाँ इस घटना का इसलिए वर्णन किया गया जिससे कि समझ में आ जाय कि हमारी संस्कृति क्या है ? हमारा धर्म क्या है ? हम लोगों को कैसे अपने बड़ों से व्यवहार करना चाहिए। इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि भीख माँग के खाना अच्छा है, गुरुजनों को मारना ठीक नहीं है, विशेषकर के जो गुरुजन, महानुभाव (महापुरुष) हैं। इसलिए भीख माँग के खाना अच्छा है और उनके खून से भीगा हुआ राज्य भोगना अच्छा नहीं है। अपने से बड़ों को 'तू' भी नहीं कहना चाहिए, बोलने-चालने में भी अपमान नहीं करना चाहिए। आजकल की संतान ये सब नहीं जानती है और वह चाहे जैसा व्यवहार करती है बड़ों से, माता–पिता आदि से, धर्म का कुछ भी विचार नहीं करती है। बड़ों के प्रति शिष्टाचार, आज्ञा पालन आदि की शिक्षा महाभारत से मिलती है।

न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो- यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषाम- स्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः॥ (श्रीगीताजी २/६)

न – नहीं, **च** – और, **एतत** – यह , विद्मः – जानना, कतरन्नो गरीयो – कौन-सी बात श्रेष्ठ (बड़ी) है ? यद्वा जयेम – कि हम जीतें या वे लोग हमको जीतें (यदि वा नो जयेयुः), जीतें या हारें, बड़ों से हारना ही अच्छा है और युद्ध में जाएँ तो हारना ठीक नहीं । हम जीतें या हम लोगों को वे जीतें, क्योंकि यानेव हत्वा – जिनको मारने के बाद, न जिजीविषामः – जीने की इच्छा हमारी नहीं है, बड़े सम्बन्धियों की अगर मृत्यु हो तो जीने से क्या फायदा? **'तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः'**– वे ही प्रमुख भीष्म, द्रोण आदि वरिष्ठ लोग जो धृतराष्ट्र के साथी हैं, सामने खड़े हैं मृत्यु के लिए, इनको मारके हम जीना नहीं चाहते हैं और वे सामने खड़े हैं । दादा जी हैं, गुरु जी हैं यदि ये ही मर गए तो हमारे जीने से क्या लाभ? इस श्लोक में अर्जुन की गुरु- भक्ति, पितृ-भक्ति दिखाई पड़ती है, वे गुरुजनों और अपने से पूज्यजनों के बिना जी नहीं सकते । अर्जुन के मन में भीष्म, द्रोण के प्रति इतना अधिक सम्मान था कि उनका यह विचार था कि इनके बिना जीना ही बेकार है जबकि आजकल के लोग तो अपने से वरिष्ठ गुरुजनों और सगे सम्बन्धियों के बिना केवल जीते ही नहीं अपितु मौज मारते हैं, प्रसन्न रहते हैं जो कि आर्य-संस्कृति के सर्वथा विरुद्ध है ।

श्लोक (गीता २/५) से संबंधित महाभारत के कर्णपर्व के कथानक का ऊपर जो वर्णन किया गया है, इसको पढ़ने से गुरु भक्ति, पितृ भक्ति और बड़ों के प्रति भक्ति मिलेगी अन्यथा जीने से कोई लाभ नहीं है । यदि भगवान् बीच में हस्तक्षेप न करते तो युधिष्ठिर की मृत्यु हो गयी होती और अर्जुन भी आत्महत्या कर लेते, इन दोनों को भगवान् ने बचाया और दोनों की प्रतिज्ञा भी पूरी हुई । बड़ों का सम्मान करना ही महाभारत में सिखाया गया है । अर्जुन ने भगवान् से स्पष्ट कह दिया कि अगर इन (गुरुजनों) को हम मार दें, तो खून से भीगा भोजन करेंगे, इसलिए अर्जुन पीछे हटे और बोले कि हम भिक्षा माँग के खा लेंगे । हर लड़के को बड़ों की आज्ञा माननी चाहिए । हठ बड़ों से नहीं करना चाहिए । गीता पढ़कर के जो मनुष्य बड़ों का सम्मान नहीं करता है वह तो महा नालायक है । जब अर्जुन ने भीख माँग के खाना अच्छा समझा और सब कुछ छोड़ दिया, अपने से बड़ों का इतना सम्मान किया तो गीता का प्रारम्भ बड़ों के प्रति सम्मान से होता है, जिसके अन्दर ये गुण नहीं हैं, उसका गीता पढ़ना बेकार है । गीता बड़ों के प्रति भक्ति भी सिखाती है । गीता में यहाँ तक कि अर्जुन ने कहा – हम जीवन भर भीख माँगकर खा लेंगे लेकिन बड़ों से नहीं लड़ेंगे, अर्जुन इतना बड़ा भक्त था । अर्जुन को मोह क्यों हुआ ? ये मोह सामान्य मोह नहीं था, उनका मोह गुरु-भक्ति, पितृ-भक्ति के कारण था कि मैं अपने से बड़े पूज्य गुरुजनों को कैसे मारूँ ? तो मूल कारण था उनकी गुरु-भक्ति या पितृ- भक्ति । अर्जुन का अर्थ क्या होता है ? अर्जुन का अर्थ होता है - सीधा, वह इतने सीधे थे कि इनमें कोई हठ आदि नहीं था । ये बात गीता से सीखनी चाहिए, नहीं तो गीता पढ़ना बेकार है । बड़ों का सम्मान, बड़ों से बोलना-चालना, उठना–बैठना ये सब सम्मानपूर्वक रहे, बस यही गीता है ।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ (श्रीगीताजी २/७)

कार्पण्य – कृपणता, कृपणता क्या चीज है ? कृपणता कहते हैं कंजूसी को, कंजूसी क्या है ? भगवान् ने कहा है – "कृपणाः फलहेतवः" (गीता २/४९) फलों की इच्छा करना ही कृपणता है । जिसको जितने फल की इच्छा होती है, उतना ही कंजूस बन जाता है । इच्छा कृपण बना देती है । यहाँ पर अर्जुन के लिए कार्पण्य से तात्पर्य है युद्ध जीतना, राज्य चाहना । इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि हम लोगों में कार्पण्य दोष आ गया है, फल की इच्छाओं ने हमको कृपण बना दिया, तभी तो हम लड़ रहे हैं । फल की इच्छा आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है । इसलिए कार्पण्य दोष का अर्थ है इच्छा । किसी में भी, चाहे वह बुड्ढा, जवान, स्त्री, पुत्र, माता–पिता आदि ही क्यों न हों, यदि कृपणता है तो गिड़गिड़ाना पड़ेगा । माँगते समय आदमी छोटा बन जाता है, कृपण बन जाता है । कृपण के भाव को 'कार्पण्य' कहते हैं । इसीलिए अर्जुन ने कहा कि कार्पण्य दोष से मेरा स्वभाव उपहत अर्थात् नष्ट हो गया है । 'कृपणता' स्वभाव को नष्ट कर देती है ।

कामना ही कृपणता

यदि हम किसी के पास माँगने गये तो अपना स्वभाव माँगना नहीं है लेकिन कार्पण्य-दोष वहाँ ले गया। अर्जुन कहते हैं कि हमारा जो वास्तविक स्वभाव है कि हम क्षत्रिय हैं, हमको क्षात्रधर्म में उदार होना चाहिए; ब्राह्मण, गुरु से नहीं लड़ना चाहिए लेकिन कार्पण्य दोष के कारण हमारा स्वभाव नष्ट हो गया। दूसरी बात ये है कि 'धर्मसम्मूढचेताः' मेरे चित्त में सम्मूढता - मोह आ गया। एक तो स्वभाव नष्ट हुआ मेरा, दूसरा चित्त में सम्मोह पैदा हो गया। सम्मोह क्यों पैदा हुआ ? धर्म के कारण से। धर्म मोह पैदा करता है। धर्म क्या है ? ये हमारे रिश्तेदार हैं, नातेदार हैं, इनको कैसे मारें हम ? धर्म सामने आके खड़ा हो गया कि ये गुरु हैं, इनसे नहीं लड़ो, ये बाबा जी हैं, दादा हैं इनसे नहीं लड़ो, ये चाचा हैं, ये ताऊ हैं, सब परिवार खड़ा है, जीजा हैं, साले हैं, इन परिवार वालों को मारना ठीक नहीं है, इस प्रकार धर्म से सम्मूढ चित्त हो गया, चित्त में मोह पैदा हो गया। एक तो स्वभाव नष्ट हुआ, दूसरा धर्म ने मोह पैदा कर दिया।अर्जुन ने भगवान् से कहा कि ऐसी स्थिति में 'यच्छ्रेयः स्यात्' 'छ्रेय' माने जो निश्चित कल्याण का रास्ता है, 'तन्मे ब्रूहि' वह मुझसे आप बताइये, क्योंकि 'शिष्यस्तेऽहं' मैं आपका शिष्य हूँ, शाधि – मुझ पर शासन करो, त्वां प्रपन्नम् – मैं आपकी शरण में आया हूँ। शिष्य किसको कहते हैं ? किसी साधु से मंत्र ले लिया और उससे कहा कि तुम हमारे गुरु हो, हम तुम्हारे चेला हैं, इसे शिष्य नहीं कहते हैं। "शासितुं योग्यःशिष्यः" जो हमेशा शासन के योग्य है, जिस पर शासन किया जाय और जो शासन माने। गुरु जी कह रहे हैं – बेटा ! त्याग करो, जो शासन नहीं मान रहा है, वह शिष्य कहाँ है ? अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं आपका शिष्य हूँ। शाधि – आप मेरे ऊपर शासन करो। शासन कैसे करें तो अर्जुन भगवान् से बोले कि मैं आपकी शरण में हूँ। जो शरण में होता है वही शासन मानता है। शरण में जो नहीं है वह शासन क्यों मानेगा ? एक रास्ते चलते आदमी से कहो कि ऐसा करो तो वह नहीं मानेगा। इसीलिए अर्जुन ने भगवान् से कहा कि मैं प्रपन्न हूँ, तुम्हारी शरण में हूँ, इसलिए मेरे ऊपर शासन करो।

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्या-
द्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम् । अवाप्य
भूमावसपत्नमृद्धं-राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥

(श्रीगीताजी २/८)

अर्जुन बोले – ये सारा राज्य हम जीत भी लें तो भी मैं नहीं देखता हूँ (न हि प्रपश्यामि), मम – मेरे, यच्छोक – जो शोक पैदा हुआ है, उच्छोषणमिन्द्रियाणाम् – इन्द्रियों को सुखा रहा है, उस शोक को जो अपनुद्याद् – दूर कर दे, हम राज्य पा जायें तो भी हमारा शोक दूर नहीं होगा, अवाप्य – प्राप्त करके, भूमौ – पृथ्वी को, असपत्नम् – शत्रु रहित निष्कंटक राज्य, ऋद्ध – समृद्ध, खूब सम्पन्न धनधान्य से, ये पृथ्वी का राज्य मिल जाय, पृथ्वी तो छोटी चीज है, सुराणाम् –देवताओं का भी, आधिपत्य – कोई इन्द्र बना दे, देवताओं के भी राजा बन जायें तो भी हमारा दुःख दूर नहीं होगा इन गुरुजनों के मारने से। इसलिए जो कल्याणकारी बात है, वह आप निश्चित रूप से मुझे बताइए कि मुझे क्या करना चाहिए ? ये सब सिद्धान्त की बातें यदि विचार करोगे तो कार्पण्य- दोष जीवन भर नहीं आएगा और धर्म से जो मोह पैदा होता है, वह भी नहीं होगा। धर्म भी मोह पैदा कर देता है। इन्द्र को भी यदि फल की इच्छा है तो वह भी कृपण बन जाता है, जैसे - एकबार वह अहिल्या के रूप पर मोहित हुआ जबकि अहिल्या ऋषि गौतम की पत्नी थी, वह वेष बदलकर उसको भोगने के लिए पहुँच गया, गौतम ऋषि का वेष बनाया और चन्द्रमा को मुर्गा बनाकर सिखा दिया तो वह नकली मुर्गा आधी रात को ही बोल पड़ा। गौतम ऋषि मुर्गे की आवाज सुनकर आधी रात को ब्रह्ममुहूर्त समझकर नदी में नहाने के लिए चले गए। पीछे से अहिल्या के पास ऋषि का वेष बनाकर इंद्र पहुँच गया और बोला –"दरवाजा खोलो।" अहिल्या ने झोपड़ी का द्वार खोल दिया, उसने देखा गौतम ऋषि खड़े हैं, इन्द्र ने गौतम के वेष में अहिल्या के साथ सम्पर्क किया, उधर असली गौतम ऋषि स्नान करके लौट रहे थे और नकली गौतम (इन्द्र) झोपड़ी से बाहर निकल रहे थे। गौतमजी ने देखा कि ये दूसरा गौतम कहाँ से आ गया ? मेरी तरह इसकी दाढ़ी और शरीर है। ध्यान से देखा तो पता पड़ा कि

यह तो इन्द्र है, गौतम बनके आया है । उन्होंने क्रोध में भरकर इन्द्र को शाप दे दिया और कहा कि स्त्री की योनि चर्मखण्ड (चमड़े का टुकड़ा) ही तो है, इसके पीछे तू नकली गौतम बनकर पाप करने के लिए चला आया तो जा, तेरे सारे शरीर में एक हजार योनियाँ हो जाएँगी । गौतम ऋषि के शाप से इन्द्र के मुँह, गाल प्रत्येक अंग पर योनि ही योनि के चिन्ह बन गये । बड़ा खराब रूप बन गया । शरीर पर छोटा-सा गड्ढा भी हो जाता है तो बुरा लगता है और योनि तो बहुत बुरा और बड़ा गड्ढा है । इन्द्र का मुँह, नाक, कान सब योनिमय हो गया तो वे गौतम ऋषि के चरणों में गिर पड़े और बोले –"अब यह चेहरा मैं कहाँ दिखाऊँ, मुझ पर कृपा करो महाराज ।" ऋषि ने कहा –"ये दंड तो तुझे भोगना ही पड़ेगा, तू देवराज होकर के कृपण बन गया ।" अतः किसी चीज की इच्छा होती है तो आदमी कृपण बन जाता है, जैसे – सांसारिक भिखारी लोगों के सामने गिड़गिड़ाता है - ए सेठ ! कुछ तो दे दे, दो रुपये साग के लिए दे दे । यह क्या है ? मनुष्य कृपण बन जाता है क्योंकि फलहेतु (इच्छा) उसको वैसा ही बना देता है । इतना बड़ा देवताओं का राजा इन्द्र भी इच्छा के कारण कृपण बन गया, उसी बात को अर्जुन कह रहे हैं कि देवताओं का आधिपत्य भी मिल जाय फिर भी ये कार्पण्यदोष नहीं जा सकता, इन्द्र बनने पर भी नहीं जाएगा, इसलिए मुझको आप सच्चा मार्ग बताइये कि मैं क्या करूँ ? इच्छा के आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है - चाहे बेटा है, चाहे स्त्री है, इच्छा मनुष्य को कृपण बना देती है । जिसके अन्दर फल की इच्छा है, वह सदा कृपण बना रहता है, उसकी आँख, नाक, कान सब झुकी हुई, भिखारी की तरह दीन होती है; ये सब कृपणता के लक्षण हैं । जब कुछ नहीं चाहिए तो कृपणता नहीं आती है । **"चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह । जिनको कछु न चाहिए, वे शाहन के शाह ॥"** ये नियम है, निष्काम व्यक्ति कभी कृपण नहीं बनते हैं, उनकी नजर कभी नहीं झुकती है और जिसके अन्दर चाह (इच्छा) है, वह तो अपने बेटे से भी झुक जाएगा और कहेगा कि तू तो मेरा बेटा है, मुझे यह दे दे, वह दे दे । स्त्री से भी झुक जाएगा, गुलाम बन जाएगा और परिवार में उसका शासन नहीं चलेगा क्योंकि कृपण बन गया । जब तुम अपनी स्त्री से कुछ नहीं माँगोगे, कुछ नहीं चाहोगे तो वह अपने आप दबेगी, अपने आप कहेगी - शासन करिए मेरे ऊपर, मैं तुम्हारी शरण में हूँ और तुम्हारे अन्दर इच्छा आ जाएगी तो वह शासन करेगी तुम पर और तुम्हारे अन्दर इच्छा नहीं है तो तुम शासन करोगे । शिष्य वही है जो शासन मानता है, केवल मंत्र लेने वाला शिष्य नहीं होता । **"शासितुं योग्यः शिष्यः"** शास् धातु से 'शिष्य' शब्द बना है । 'शिष्य' शरण में आता है तो शिष्य है, शरण किसी दूसरे की है तो शिष्य नहीं है । दास तुम्हारो आस और की, हरो विमुख गति को झगरो । विमुख व्यक्ति दूसरे का दास है, दूसरे से इच्छा करता है । ये जीवन भर याद रखना चाहिए कि कृपण कौन है ? "कृपणाः फलहेतवः" (गीता २/४९) फल की इच्छा आते ही मनुष्य कृपण बन जाता है । इच्छा मनुष्य को कृपण बना देती है, मँगता (भिखारी) बना देती है । इसलिए कृपणता अपने अन्दर नहीं आवे तो सारे जीवन हम शाहनशाह बने रहेंगे ।

संजय उवाच –

एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप ।
न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥९॥

गुडाकेश- अर्जुन, गुडाका कहते हैं नींद को, ईश – स्वामी, नींद को जीत लिया जिन्होंने, अर्जुन को सोने की जरूरत नहीं पड़ती थी । जैसे हम लोग नहीं सोयेंगे तो ब्लड प्रेशर (रक्तचाप) बढ़ जाएगा, ऐसी बीमारी नहीं थी उनको, वह गुडाकेश थे । गुडाका अर्थात् नींद के स्वामी थे, वह नहीं सोवें तो भी उनको कुछ रोग या कोई परेशानी नहीं होती थी । गुडाकेश – अर्जुन ने, हृषीकेश भगवान् से, हृषीक – इन्द्रियाँ, ईश – इन्द्रियों के स्वामी भगवान् से, एवम् – ऐसा कहने के बाद, परंतप - परम तपस्वी (अर्जुन), न योत्स्य – मैं युद्ध नहीं करूँगा, 'गोविन्दम्' – गोविन्द से, उक्त्वा – कहकर के, तूष्णीं बभूव ह – चुप हो गए । अर्जुन ने निर्णय दे दिया कि मैं युद्ध नहीं करूँगा ।

.....

निष्कामता (निष्किंचनता) एक ऐसा दिव्य गुण है, जिसके कारण से स्वयं श्रीभगवान् वश में (आधीन) होकर वास्तविक बोध दे देते हैं ।

.....

सच्ची शान्ति 'प्रसन्नता'

तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥१०॥

कायदे से अर्जुन के कायरता से भरे हुए वचनों को सुनकर भगवान् को क्रोध करना चाहिए था क्योंकि वही द्वारिकाधीश को युद्ध के लिए बुला के लाया था और अब कुरुक्षेत्र की रणभूमि में युद्ध के प्रारम्भ होने पर वह युद्ध करने को स्पष्ट मना कर रहा है तो इसमें उनका भी तो अपमान है, लेकिन भगवान् ने ये शिक्षा दी कि ऐसी स्थिति में भी क्रोध नहीं आना चाहिए, खीज नहीं होनी चाहिए । यहाँ श्रीकृष्ण के लिए शब्द प्रयोग किया गया - 'प्रहसन्निव' अर्थात् वह बहुत हँसे, अपने से छोटे की गलती पर हँस गए, ऐसे दयालु हैं । प्रायः जब छोटा व्यक्ति बात नहीं मानता है तो बड़ा आदमी नाराज हो जाता है, श्रीभगवान् ने शिक्षा दी कि ऐसा करना गलत है, बड़े का मतलब यह नहीं है कि तुम बड़प्पन का अहम् रखो या गुस्सा करो, बल्कि प्रहसन् – भगवान् बहुत ज्यादा हँसे, हृषीकेश– भगवान्, तम् – उनसे, इदं वचः उवाच – ये बात बोले, सेनयोरुभयोर्मध्ये - दोनों सेनाओं के बीच में । भगवान् को गुस्सा करना था लेकिन वह हँस गए, इस प्रकार भगवान् ने शिक्षा दिया कि क्रोध के मौके पर हँसो, दुःख के मौके पर हँसो, इस तरह से तुम उसको जीत लो । हृषीकेश – कृष्ण, बड़े जोर से हँसे दोनों सेनाओं के बीच में, इसका एक कारण है कि जब शत्रु पक्ष देखता है कि हमारा विरोधी उदास है तो उसका उत्साह बढ़ जाता है और जब शत्रु पक्ष देखता है कि इनको तो कुछ भी उदासी नहीं है, हँस रहे हैं तो उसका मनोबल गिर जाता है । यह नीति, धर्म और ज्ञान की दृष्टि से भी बढ़िया है कि क्रोध के मौके पर हँसो, दुःख के मौके पर हँसो, ऐसा भगवान् ने स्वयं करके दिखाया है । यह एक बहुत बड़ा गुण है । कोई आदमी गाली दे रहा है तो हँसो, ऐसा ही महापुरुषों ने किया है, जैसे एक उदाहरण है कि एक बार गौतम बुद्ध प्रचार करते हुए एक गाँव में गए, वहाँ के लोग उनसे चिढ़ते थे । एक दुष्ट व्यक्ति ने उनके सामने आकर के गाली देना शुरू किया - ढोंगी है, पाखण्डी है, इस प्रकार उनके विरुद्ध अनेकों अपशब्द कहता गया किन्तु वह चुपचाप सुनते रहे, तब तो उसका क्रोध और अधिक बढ़ गया और वह क्रोधावेश में बोला – "अरे, बड़ा बेशर्म है, बोलता भी नहीं है, चुप है ।" तब भी गौतम बुद्ध कुछ नहीं बोले । अन्त में अत्यधिक क्रोधवश वह दुष्ट व्यक्ति बोला – "नहीं बोलता है, भाग जा ।" तब बुद्ध भगवान् बोले कि महाशय ! मैं आपके घर पर आऊँ और आप मुझको बहुत-सी चीजें भेंट दें और मैं नहीं लूँ तो वे चीजें कहाँ जाएँगीं ?

तो वह (दुष्ट व्यक्ति) बोला – "अरे मूर्ख, वे चीजें वहीं की वहीं रह जाएँगीं ।" गौतम बुद्ध बोले –"ठीक है, आपने मुझे इतनी गालियाँ दीं और मैंने एक भी गाली नहीं ग्रहण की अर्थात् सारी गालियाँ आपके पास ही रह गईं ।" तब वह दुष्ट आदमी शर्मिन्दा हो गया और सारे लोग हँसने लग गए । भगवान् बुद्ध की विजय हो गई, शान्ति की ऐसी ही विजय होती है । ऐसा महापुरुषों ने किया है, वही भगवान् कृष्ण करके दिखा रहे हैं । ऐसा अगर हम लोग भी करने लग जाएँ तो बड़ी ऊँची विजय हो जाती है ।प्रहसन – बहुत जोर से हँसना, दोनों (कौरव-पाण्डव) सुनने लग गए , 'हा ऽ हा ऽ ऽ हा ऽ ऽ ऽ हा ऽ ऽ ऽ ऽ' ऐसे जोर से कृष्ण हँसे दोनों सेनाओं के बीच में, कौरव भी सुन रहे थे, पाण्डव भी सुन रहे थे कि अरे, ये तो कृष्ण हँस रहे हैं । कृष्ण हँसते हुए अर्जुन (जो दुःखी हो रहा था) से बोले । ये सब चीजें सीख लो, कहाँ हँसना है ? कोई गाली दे रहा है, क्रोध के समय या दुःख के समय (तो) हँसना चाहिए, ये चीज तुमको महापुरुष बना देगी । (यद्यपि वीर रस और रौद्र रस का आपस में मेलजोल है । जब योद्धा लड़ता है तो रुद्र रूप में आ जाता है, उसकी आँख-नाक चढ़ जाती है, भयानक आकृति बन जाती है क्योंकि वीर रस और रौद्र रस का मेल है किन्तु अर्जुन महाभारत में अधिकतर मुस्कुराकर लड़ते थे । उत्तम योद्धा मुस्कुराकर खेल समझकर लड़ते हैं । लड़ते समय भी श्यामसुन्दर मधुर बने रहते हैं क्योंकि ये मधुर हैं, इनका सब कुछ मधुर है । इस भयंकर वातावरण में भी वे मुस्कुरा रहे थे क्योंकि वे रसमय प्रभु हैं । एक बात और है, श्यामसुन्दर ने ब्रज में कभी हथियार नहीं उठाया, जिससे कि मधुरता कहीं बिगड़ न जाए । जितने भी असुर ब्रज में उन्होंने मारे तो पूतना को स्तन पान करके मार दिया, किसी असुर को टांग पकड़कर पछाड़ दिया और अभी कालिय को नाच-नाचकर पछाड़ देंगे । इसीलिए यह बड़ी विचित्र बात हुई कि कालियनाग को देखकर श्यामसुन्दर मुस्कुरा रहे थे । कालियनाग ने देखा कि यह बालक मुस्कुरा रहा है और निर्भय खेल रहा है तथा यमुनाजी से कमल लेकर घुमा रहा है, यह उनकी एक अदा है ।)

श्रीसेवाराधना ही दिव्य तप

ऋषभदेवजी ने कहा –

नायं देहो देहभाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड्भुजां ये ।
तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वम्
शुद्ध्येद्यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥

(श्रीभागवतजी - ५/५/१)

भगवान् की वाणी में अमृत टपक रहा है । ऐसे ही बोलना चाहिए । कोई राजा हो जाए तब भी ऐसे ही बोलना चाहिए । भगवान् ने कहा – हे मेरे पुत्रो !

भगवान् की वाणी में प्रजा के प्रति वात्सल्य भरा है । ऐसा नहीं कि प्रजा है तो उससे वैर करें । सबको अपना बेटा मानकर भगवान् बोल रहे हैं । महापुरुष की वाणी से ही पता चल जाता है कि यह महापुरुष है । स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका में विश्व धर्म सम्मलेन में भाग लेने गये थे तो वहाँ जितने भी धार्मिक नेता भाषण देने के लिए आते तो सम्बोधन में वे सभी यही कहते –

लेडीज एंड जेंटलमेन (ladies and gentle men) अर्थात् महिलाओं और भद्र पुरुषो !

किन्तु जब स्वामी विवेकानन्द अपना भाषण देने के लिए खड़े हुए तो उन्होंने कहा – माई डियर ब्रदर्स एंड सिस्टर्स (my dear brothers and sisters) मेरे प्यारे भाइयो और बहनो !

इतना सुनते ही उस बड़े हॉल में बहुत देर तक तालियाँ बजती रहीं । सब लोग आपस में कहने लगे कि यह कौन है, फ़रिश्ता है या ईश्वर का कोई दूत है । सभी लोग स्वामी जी की वाणी सुनकर मन्त्र मुग्ध से हो गये । इसलिए सबसे कैसे बोलना चाहिए, यह भगवान् स्वयं अपने आचरण के द्वारा सिखाते हैं । गीता में भी भगवान् कृष्ण अर्जुन को बार-बार मधुर वाणी से कहते हैं – हे महाबाहो ! हे निष्पाप !! हे अनघ !!! कैसे-कैसे शब्द भगवान् ने अर्जुन के लिए प्रयुक्त किये हैं ।

कुछ माता-पिता ऐसे हैं जो अपने बच्चों तक को आदर सूचक शब्द 'जी' लगाकर बोलते हैं । इन आचरणों का प्रभाव पड़ता है, तभी तो बच्चा मधुर व्यवहार करना सीखता है । बच्चा मधुर व्यवहार तभी सीखेगा, जब माता-पिता स्वयं ऐसा करके दिखायेंगे । जब माँ-बाप स्वयं ही आपस में लड़ते रहेंगे तो बच्चा तो अपने आप ही असुर बन जाएगा ।

भगवान् ऋषभदेवजी कहते हैं – 'हे मेरे पुत्रो ! यह मनुष्य शरीर इसलिए नहीं मिला है कि हम लोग दुःखमय भोगों को भोगें । इन भोगों को तो सुअर भी भोगता है । सुअर मल खाता है । मैथुन में स्त्री-पुरुष एक दूसरे के मल-मूत्र से भरे शरीर को भोगते हैं तो मल-मूत्र ही तो खाते हैं । यदि मनुष्य दिन-रात मल-मूत्र के भोगों को भोगता है तो वह सुअर ही तो है । चाहे कितना ही बढ़िया कोई वस्त्र पहन ले किन्तु उसका लक्ष्य यदि दिन-रात मल-मूत्र का मैथुनी भोग भोगना ही है तो वह मनुष्य वास्तव में सुअर ही है । भगवान् कहते हैं कि तुम लोगों को मनुष्य शरीर इसलिए नहीं दिया गया है कि तुम सुअर की तरह भोग भोगो । यह शरीर इसलिए मिला है कि दिव्य तप करो, जिससे तुम्हारा अन्तःकरण स्वच्छ हो जाए और फिर भगवत्प्रेम की प्राप्ति हो । भगवत्प्रेम कैसे मिलेगा ? इसके लिए पहला काम तो यह है कि महत्सेवा करो, महापुरुषों के पास जाओ ।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

(श्रीभागवतजी - ५/५/२)

महापुरुषों से दूर नहीं भागो, उनकी सेवा करो । स्त्री नरक का द्वार है क्योंकि बड़ी जल्दी उसमें आसक्ति हो जाती है । स्त्री के लिए पुरुष अपने माता-पिता को ऐसे छोड़ देता है मानो तिनका हों । स्त्रियों के संगियों का भी संग छोड़ो ।

अब प्रश्न यह है कि महात्मा कौन हैं ? लाल कपड़ा वाले या सफ़ेद कपड़े वाले क्योंकि महात्मा भी तो कई प्रकार के हैं । महात्मा का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि वे समान चित्त के होते हैं तथा शांत रहते हैं और जिनको क्रोध नहीं आता है । इसीलिए तो वे महात्मा हैं । महात्मा बनकर कोई लड़े तो किस बात का महात्मा है । ऋषभदेवजी लक्षण बता रहे हैं कि महात्मा सबके सुहृद होते हैं तथा मुझमें और मेरे भक्तों में सौहार्द रखते हैं । महात्मा से मतलब यहाँ किसी वेषधारी से नहीं है, गृहस्थ में भी मनुष्य महात्मा हो सकता है, यदि वह आसक्ति नहीं रखता है ।

भगवान् ऋषभ आगे कहते हैं कि संसार के लोग मस्त हो रहे हैं, मतवाले हो रहे हैं क्योंकि **'इन्द्रियप्रीतय आपृणोति'** – ये दिन-रात अपनी इन्द्रियों की प्रीति में लगे रहते हैं। सबेरे से शाम तक अपने घरों में लोग इन्द्रिय भोग की ही तैयारी करते रहते हैं। सबेरे से उठकर लोग चाय-नाश्ता करते हैं। सोकर उठते हैं तो बिस्तर पर ही चाय पीने लगते हैं, फिर कई तरह का नमकीन बनता है, दोपहर के भोजन में चार तरह के साग, चटनी और दालें बनायी जाती हैं, फिर शाम को लोग चाय पीते हैं। रात को फिर से भोजन के लिए तरह-तरह के व्यंजन बनाते हैं। इस तरह सबेरे से रात तक लोग अपने पेट का गड्ढा भरने में ही लगे रहते हैं और यह गड्ढा कभी भरता नहीं है, सदा खाली ही बना रहता है। आजकल लोग दिन भर टेलीविजन देखते रहते हैं। ऐसी-ऐसी विनाश की चीजें बन गयी हैं कि मनुष्य भजन कैसे करेगा ? बड़े-बड़े भक्तों के घरों में भी टेलीविजन आ गया है, दिन-रात उनके बच्चे उसी को देखने में लगे रहते हैं। दुनिया में इन्द्रिय प्रीति के लिए, विनाश के लिए ही प्रतिदिन नये-नये आविष्कार किये जा रहे हैं। प्राचीन काल में लोग दिन-रात भगवान् की आराधना इसलिए कर लेते थे क्योंकि तब इन्द्रिय भोग के लिए विनाशकारी चीजों का निर्माण नहीं किया जाता था। अब आजकल के लोग पतनकारी चीजों के कारण भजन कैसे कर पायेंगे ?

ऋषभ भगवान् बोले – **'न साधु मन्ये'** – मनुष्य इन्द्रिय प्रीति के लिए जो कार्य करता है, उसे मैं ठीक नहीं समझता हूँ क्योंकि इन चीजों को भोगने से शरीर क्लेशद बन जाता है और मृत्यु के बाद भी अगले जन्मों में उसे कष्टदायक योनियाँ प्राप्त होती हैं। जब तक मनुष्य आत्मतत्त्व की जिज्ञासा नहीं करता है तब तक उसका मन उसे कर्मों में फँसा-फँसा कर मार डालता है। यह मन मनुष्य को नचाता ही रहता है। जब तक मुझ वासुदेव में प्रेम नहीं होगा तब तक वह देह बन्धन से छूट नहीं सकता है। इन्द्रियों की जितनी भी चेष्टायें हैं, इन्हें बेकार समझो। कोई कहे कि हम बड़े भक्त हैं और दिन-रात वह इन्द्रिय चेष्टाओं में लगा है तो यह गलत बात है, वह भक्त नहीं है। **'यदा न पश्यत्ययथा गुणेहाम्'** – 'गुणेहा' अर्थात् इन्द्रिय चेष्टाओं को बिलकुल अयथा (बेकार) समझना चाहिए। इन्द्रिय तृप्ति के कारण ही मैथुन भाव को प्राप्त होकर सारे जीवन मूर्ख मनुष्य आत्मस्वरूप को भूला रहता है। जीव कितना स्वतन्त्र है किन्तु एक स्त्री के बन्धन के कारण (शहरों में) एक ही कोठरी में सारा जीवन बिता देता है, जैसे एक चूहा चुहिया की आसक्ति के कारण सारा जीवन एक छोटे से बिल में बिता देता है। स्त्री ऐसी शक्ति है कि उसके कारण पुरुष का सारा जीवन एक ही कोठरी में बीत जाता है, केवल उतने ही क्षेत्र को अपना मानकर। यह मिथुनी भाव हृदय की बहुत बड़ी गाँठ है। स्त्री के लिए पुरुष, पुरुष के लिए स्त्री, दोनों ही एक दूसरे के बन्धन के कारण हैं। यहाँ स्त्री शरीर की निन्दा नहीं की गयी है, पुरुष शरीर की निन्दा नहीं है। ऋषभ भगवान् कहते हैं कि इन दोनों का जो मिथुन भाव है, मैथुनी आसक्ति है, वह इनके लिए बन्धन का कारण है, अन्यथा स्त्री तो देवी है किन्तु **'पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेतम् तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः।'** (श्रीभागवतजी - ५/५/८)

स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री – इन दोनों की जो परस्पर मैथुनी आसक्ति है, यह उनके हृदय की सबसे बड़ी गाँठ है। यदि कोई पुरुष इस गाँठ से छूटना चाहता है तो स्त्री छूटने नहीं देती। कितने ही पुरुष जो महापुरुषों के सत्संग के प्रभाव से उनके आश्रय में भक्तिमय जीवन बिता रहे थे, उनकी पत्नियाँ उन्हें वापस घर में ले गयीं, उनका सत्संग सदा के लिए छुड़ा दिया। इसी प्रकार यदि कोई स्त्री चाहती है कि मैं सदा श्रीकृष्ण स्मरण करूँ तो उसका पति साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति अपनाकर उसे भक्ति से दूर कर देता है। इस तरह दोनों ही एक दूसरे के लिए बन्धन की गांठ हैं। इसीलिए मनुष्य दिन-रात अयमहं ममेति - मैं-मेरापन के भाव से ग्रसित रहता है और इसे समझ नहीं पाता है। पुरुष सोचता है कि मैं तो धर्म कर रहा हूँ, अपने स्त्री-पुत्र का पालन कर रहा हूँ जबकि यह धोखा है। हम लोग आसक्ति के वशीभूत होकर अपने परिवार का पालन करते हैं। आसक्ति रहित कर्म एक अलग बात है। अपनी आसक्ति को मनुष्य समझ नहीं पाता है। यदि अपने परिवार का पालन भी करते हो तो आसक्ति रहित होकर करो किन्तु मनुष्य की आसक्ति नहीं छूटती है। मनुष्य अपनी आसक्ति के बारे में सोचता है कि हम धर्म कर रहे हैं। अपनी कमी को समझना चाहिये। यदि स्त्री-पुत्र का पालन भी करते हो तो उन्हें ईश्वर रूप समझकर पालन करो, इससे तुम्हारी मिथुनी भाव की आसक्ति

चली जाएगी । हर व्यक्ति अपनी आसक्ति को धर्म समझे बैठा है और इसी धोखे में अपने को ऊँचा समझता है जबकि वह बन्धन में पड़ा हुआ है । मिथुनी भाव की हृदय में जो गाँठ पड़ गयी है, उसी के कारण घर, खेत, पुत्र, धन और स्वजन आदि को मनुष्य अपना समझता है, उनके प्रति मेरेपन का भाव हो जाता है । मेरापन हो जाने के कारण बेटा बीमार हो जाये तो रोता है, बेटे की नौकरी लग जाये तो प्रसन्न होता है । इस सम्बन्ध में सूरदासजी ने बड़ा सुन्दर भाव गाया है –

जगत में जीवत ही को नातो ।
मैं मेरी कबहुँ नहिं कीजै,
कीजै भक्त सुहातो ।

यदि कोई कहे कि मैं तो गृहस्थ हूँ, अतः अपने परिवार का जो पालन कर रहा हूँ, वह तो धर्म है, मैं तो धर्म के अनुसार ठीक ही कर रहा हूँ । उन्हें भगवत्स्वरूप समझकर उनका पालन कर रहा हूँ तो सूरदास जी कहते हैं कि यह तुम्हारी बातें ही बातें हैं । तुम अपने परिवार को भगवत्स्वरूप नहीं समझ रहे हो क्योंकि सूरदास जी आगे कहते हैं –

'सुख सीरो दुःख तातो'

तुमको सुख तो ठण्डा लगता है और दुःख गरम लगता है तब फिर तुम भक्त कहाँ हो ? भक्त होते तो तुमको सुख और दुःख समान लगते, इसलिए तुम धोखे में पड़े हुए हो, सोचते हो कि मैं धर्म कर रहा हूँ, धर्म नहीं कर रहे, तुम तो अपनी आसक्ति का पोषण कर रहे हो ।

सूरदास कछु थिर न रहैगो,
जो आयो सो जातो ।

सूरदासजी कहते हैं कि जो चीज आई है, वह तो चली जाएगी । तुम कौन से धोखे में हो, अपनी करनी को समझो । अपने में विचार करो कि तुम्हारे अन्दर कितनी कमी है । यदि तुम सबको भगवत्स्वरूप समझते तो दुःख में रोते और सुख में हँसते नहीं ।

इसीलिए भगवान् ऋषभ देव जी कहते हैं कि मनुष्य के अन्दर मिथुनी भाव की ग्रन्थि पड़ जाने के कारण वह मैं-मेरा करता रहता है । जब उसके हृदय की यह गाँठ ढीली पड़ेगी तब मनुष्य मुक्त होगा । जब तक यह गाँठ पड़ी हुई है, मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता चाहे वह साधु बने, विरक्त बने अथवा कुछ भी बन जाये । अब प्रश्न यह उठता है कि यह गाँठ ढीली कैसे पड़ेगी ? मिथुनी भाव की जो यह गाँठ है कि यह मेरी पत्नी है, मेरा बेटा है, मेरा मकान, धन आदि है तो इसको दूर करने का उपाय ऋषभ भगवान् बताते हैं कि सच्चे गुरु का भक्तिपूर्वक अनुगमन किया जाये । अब ऐसा नहीं समझना चाहिये कि किसी साधु से कंठी ले आये और गुरु बना लिया, नहीं । वस्तुतः गुरु में ऐसी योग्यता होनी चाहिए कि उसके अन्दर आसक्ति को छुड़ाने की शक्ति हो और जो स्वयं भी आसक्ति से छूटा हुआ हो । गुरु यदि स्वयं ही आशा कर रहा है कि मेरा शिष्य आएगा तो कुछ धन भेंट करेगा तो वह तुम्हारी आसक्ति क्या छुड़ाएगा ? इसलिए ऋषभ देव जी कह रहे हैं कि केवल ऐसा नहीं करना कि कहीं से गुरु दीक्षा ले आये बल्कि भक्तिपूर्वक गुरु का अनुगमन करो, उनका संग करके दिन-रात उनकी सेवा करो तब उनके निःसंग आचरण को देखकर तुम स्वयं समझ जाओगे कि हमारे गुरुदेव तो पैसा-धेला की परवाह नहीं करते हैं । कोई कितना भी हीरा-मोती दे जाये, उन्हें उससे कोई मतलब नहीं है तो यह देखकर शिष्य को स्वयं एक शिक्षा मिलेगी और यदि गुरु बनकर कोई बहुत ऊँचा भाषण करता है किन्तु भीतर जाकर कहता है कि आज कथा में थोड़ा पैसा चढ़ा या ज्यादा पैसा चढ़ा तो देखने वाला क्या सोचेगा किन्तु यदि गुरुदेव निःसंग हैं तो शिष्य बिना किसी उपदेश के ही निःसंग बन जायेगा । इसलिए ऐसे गुरु का भक्ति सहित दिन-रात अनुगमन करना चाहिये । ऐसा नहीं कि साल में एक बार दण्डवत कर आये । उनका सतत् अनुगमन करना चाहिये, जैसे मनुष्य भगवान् की सेवा नित्य करता है, वैसे ही सद्गुरु की सेवा भी नित्य करना चाहिये, नित्य न कर सके फिर भी यथाशक्ति करनी चाहिए । गुरु और भगवान् को शास्त्र में एक समान स्थिति पर रखा गया है । वेदों में भी कहा गया है – 'यथा देवे तथा गुरौ ।' जैसे भगवान् की सेवा करे, उसी प्रकार गुरु की सेवा भी वितृष्ण होकर करे । सुख-दुःख, काम-क्रोध इत्यादि को सहो, मैथुनीभाव की गाँठ को यदि सच में छुड़ाना है तो द्वन्द्वों (राग-द्वेष इत्यादि) से दूर रहकर निरन्तर सत्संग (कथा-कीर्तन-सेवादि) का श्रवण-कथन-चिन्तन-सेवन करो ।

.....

जीवन की धारा को बदलने का सबसे सरल-सहज-सरस उपाय एकमात्र 'सत्संग' ही है ।

श्रीकृष्णप्रेमियों का अन्तरंग-भाव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - केशी और व्योमासुर का कृष्ण के द्वारा वध होने पर अक्रूरजी को ब्रज के लिए प्रस्थान करना ही पड़ा । मथुरा में रात भर वे यही चिन्तन करते रहे कि पता नहीं, श्रीकृष्ण मेरे हृदयगत भावों को समझेंगे कि नहीं, कहीं वे मुझे अपना शत्रु न समझ बैठें । फिर सोचते हैं कि नहीं, वे मुझे शत्रु नहीं समझेंगे, वे तो भगवान् हैं, अन्तर्यामी हैं, अतः वे सब कुछ जानते हैं । प्रातःकाल होने पर अक्रूरजी रथ पर सवार होकर नन्दबाबा के ब्रज की ओर चल दिए । मार्ग में वे इस प्रकार सोचने लगे –

किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥

(श्रीभागवतजी – १०/३८/३)

न जाने मेरे कौन से जन्मों का सुकृत उदय हो गया, जिससे मुझे आज श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त होगा । ऐसा कौन सा मैंने तप किया, कौन सा सदाचरण किया अथवा कौन सा दान दिया, जिनके फलस्वरूप आज मुझे कृष्ण का दर्शन प्राप्त होने वाला है ।

अक्रूरजी बहुत प्रसन्न हो गये । ब्रजप्राप्ति और कृष्ण दर्शन प्राप्ति के विचार से उनकी ऐसी विचित्र स्थिति हो गयी कि वे बार-बार कभी आगे बढ़ते, कभी पीछे लौट आते । उनको यह भी याद नहीं रहा कि किस मार्ग से जाना चाहिए, कहाँ जाना चाहिए ? जब देह का ही अनुसन्धान उन्हें नहीं रहा तो फिर मार्ग का अनुसन्धान कैसे होता ? अक्रूरजी बार-बार राहगीरों से पूछ लेते कि ब्रज-वृन्दावन के लिए कौन सा मार्ग बढ़िया है ? राहगीरों के बताने से जैसे-तैसे भोर के चले हुए अक्रूरजी को ब्रज पहुँचने में संध्या हो गयी । संध्या समय जब अक्रूरजी नन्दगाँव पहुँचे तो उन्होंने विचार किया कि मुझे कृष्ण दर्शन करने हैं तो सबसे पहले उनका दर्शन कहाँ होगा ? तब तक उन्हें श्रीकृष्ण के चरणचिह्न पृथ्वी पर अंकित दिखायी पड़े । उन चरणचिह्नों के दर्शन करते ही अक्रूरजी का हृदय आनन्द और प्रेम के आवेग से भर उठा, वे रथ से कूदकर उस धूलि में लोटने लगे और बार-बार उस चरण धूलि का अपने सर्वांग में लेपन करने लगे । कभी मस्तक से लगाते, कभी वक्षःस्थल से लगाते तो कभी उदर से लगाते । पूरे शरीर में अक्रूरजी कृष्ण चरणरज का लेपन करने लगे । नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी, हृदय में कृष्ण दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा होने लगी, थोड़ी देर में ही उन्हें कृष्ण दर्शन प्राप्त होने वाला है, इसलिए मन में बड़ी भारी प्रसन्नता है । अक्रूरजी सोचने लगे कि श्रीकृष्ण का दर्शन करने कहाँ जाऊँ, या तो वे गोचारण के लिए गये होंगे अथवा नन्दभवन में होंगे अथवा गो-खिरक में होंगे । गोधूलि बेला थी, अक्रूरजी ने देखा कि ब्रज में चारों ओर गायों के चरणों से उठने वाली धूल उड़ रही है ।

ब्रज की इतनी महिमा क्यों है, ब्रज इतना पवित्र देश क्यों है, इसका कारण यही है कि जब संध्या समय श्रीकृष्ण लाखों गायों से, ग्वालबालों से समावृत होकर लौटते थे तो गायों के खुरों से जो धूल उड़ती थी, उस गोधूलि से सारा ब्रज स्नान किया करता था । इसीलिए ब्रज परम पवित्र देश हुआ । जब अक्रूरजी ने देखा कि चारों ओर गोधूलि उड़ रही है तो वे समझ गये कि श्रीकृष्ण गोचारण करके अब वन से ब्रज को लौट रहे हैं । इसलिए उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब तो मैं सीधे गो खिरक में ही जाऊँगा । उन्होंने अपने रथ को गो खिरक की ओर बढ़ाया । वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि समुद्रवत् गायों की बड़ी भारी संख्या है, चारों ओर गायें ही गायें हैं । उन गायों के मध्य ग्वालबालों की मण्डली है और ग्वालबालों के मध्य में दोनों भैया श्रीकृष्ण-बलराम खड़े हुए हैं । कृष्ण-बलराम की रूप माधुरी का पान करके अक्रूरजी से रहा नहीं गया । वे सोचने लगे कि देखो तो सही गोपाल और हलधर भैया को, कैसे ये गायों से समावृत होकर खड़े हैं । इनको गायों के बीच में खड़ा होना, गायों के बीच में रहना कितना प्रिय है ।

वस्तुतः कृष्णावतार तो हुआ ही गायों के लिए है । गोवंश की रक्षा, गोवंश की सेवा – बस इन्हीं कारणों से कृष्णावतार हुआ । भगवान् ने अवतार लेकर गो सेवा करायी ही नहीं, गो सेवा स्वयं की । गिरिराज धारण करके गायों की रक्षा की । इसीलिए उनका नाम ही गोविन्द हो गया । गायों से उन्हें इतना प्रेम है । अक्रूरजी दूर से विलक्षण छटा को देखने लगे, कृष्ण-

बलराम पीताम्बर और नीलाम्बर धारण किये हुए हैं । उनका दर्शन करके अक्रूरजी रथ से उतरकर दौड़ते हुए श्रीकृष्ण के पास गये और उनके चरणों में गिर पड़े । श्यामसुन्दर ने देखा कि अक्रूरजी आये हैं तो 'चाचाजी-चाचाजी' कहकर उन्हें उठाया और अपने हृदय से लगा लिया । 'चाचाजी' सम्बोधन सुनते ही अक्रूरजी का हृदय गद्गद हो गया । वे सोचने लगे कि श्रीकृष्ण मेरे भाव को जान गये, इन्होंने मुझे आत्मीय(अपना) बना लिया, इससे बड़ी उपलब्धि मेरे लिए और क्या होगी ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी ने अक्रूरजी का भलीभाँति सम्मान किया । श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कंस के अगले कार्यक्रम के बारे में पूछा । उन्होंने सोच लिया कि चाहे कुछ भी हो जाये, मैं प्रभु से झूठ नहीं बोलूँगा । उन्होंने श्यामसुन्दर से सच्ची बात बताते हुए कहा – 'प्रभो ! नारदजी ने सब बना-बनाया काम बिगाड़ दिया । उन्हें कंस को यह बताने की क्या आवश्यकता थी कि आप देवकी के आठवें पुत्र हैं । अब तो वह दुष्ट दैत्य आपको मारने के लिए कटिबद्ध हो गया है और इस जघन्य कृत्य के लिए उसने मुझे यहाँ भेजा है । यज्ञोत्सव के बहाने आप दोनों भाइयों को वह मथुरा बुलाना चाहता है और वहाँ मल्ल-क्रीड़ा के द्वारा आप दोनों को मरवाना चाहता है । मैंने तो आपसे सत्य बात कह दी, अब आपको जो उचित लगे, उसे आप करें ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ने हँसते हुए अक्रूरजी से कहा – 'चाचाजी ! आप चिन्ता न करें । मामाजी ने बुलाया है तो मैं अवश्य जाऊँगा, इस बहाने मथुरा भी घूम लूँगा, कभी मथुरा जाने का अवसर नहीं मिला, प्रथम बार मथुरा में गमन होगा किन्तु आप इस बात का ध्यान रखें कि नन्द बाबा को यह पता न चल जाये कि कंस मुझे मारना चाहता है । यदि उन्हें इस बात का पता चल गया तो फिर वे मुझे मथुरा कभी नहीं भेजेंगे ।'

अक्रूरजी ने नन्दबाबा से तो वही बातें कहीं जो कंस ने उन्हें कहने के लिए भेजा था कि मथुरा में यज्ञोत्सव है, महाराज कंस ने उसे देखने के लिए आप सभी को आमन्त्रित किया है, आप सभी मथुरा पधारें और उस उत्सव का दर्शन करके आनन्द लें । अक्रूरजी की बात सुनकर नन्दबाबा को बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने कहा कि कंस ने प्रसन्न होकर हम लोगों को निमन्त्रण भेजा है, यह तो बड़ी अच्छी बात है । नन्दबाबा ने रात को ही ब्रजवासियों को यह घोषणा करवा दी कि कल राम-कृष्ण मथुरा जायेंगे, सभी ग्वालबाल समय से तैयार रहें । जो गोरस घर में रखा हो, उसे एकत्रित कर लें, उसी दौरान हम लोग कंस को वार्षिक कर भी चुका आयेंगे । सम्पूर्ण ब्रज में चारों ओर यह सूचना फ़ैल गयी । ग्वालबालों ने यह समाचार सुना तो वे एक-दूसरे से कहने लगे कि तूने नहीं सुना, कल कन्हैया मथुरा जा रहा है । जा तो रहा है किन्तु हम मना कर देंगे तो वह नहीं जायेगा । ऋषभ सखा, जो कृष्ण से आयु में बड़ा था, वह बोला – 'मैं कन्हैया से बड़ा हूँ । वह मेरी हर बात का मान रखता है, मैं उसे मना कर दूँगा तो कन्हैया मथुरा की ओर पाँव करके भी नहीं सोयेगा और तुम लोग उसके मथुरा जाने की बात कह रहे हो । कन्हैया को मैं मथुरा नहीं जाने दूँगा । जब तक हम लोग यहाँ रहे, कन्हैया के साथ ही हमने खाया-पिया, खेले-कूदे । अब कन्हैया के बिना हम यहाँ रहकर क्या करेंगे ?' एक सखा ने ऋषभ से पूछा कि यदि कन्हैया ने तेरी बात नहीं मानी तब फिर क्या होगा ? ऋषभ ने कहा कि यदि कन्हैया नहीं रुका तो फिर हम सब भी उसके साथ चलेंगे, वह रथ पर बैठकर जायेगा तो हम पैदल चलेंगे परन्तु कन्हैया को अकेले नहीं जाने देंगे ।

ग्वालबालों की समस्या का तो समाधान हो गया किन्तु वे ब्रजदेवियाँ, जो कृष्ण को सर्वात्मसमर्पण कर चुकी थीं, अभी कृष्ण दर्शन से उनका मन तृप्त भी नहीं हुआ था कि वियोगावस्था सामने आ गयी । सभी ब्रजगोपियाँ बैठकर परस्पर चर्चा करने लगीं । कृष्ण का मथुरा गमन ब्रज में एक बहुत बड़ी चर्चा का विषय बन गया । एक गोपी ने अपनी सखी से कहा – 'अरी ! कल कृष्ण मथुरा चले जायेंगे ।' दूसरी गोपी ने कहा – 'तो क्या हुआ ? वैसे भी हमें दिन भर कृष्ण का दर्शन नहीं मिलता है । दिन में गोचारण के कारण वैसे भी हमें कन्हैया का वियोग ही रहता है ।' तीसरी गोपी ने कहा – 'जब गोचारण के लिए कन्हैया जाते हैं तो संध्या के समय उनके आगमन की प्रतीक्षा का हमें सहारा तो रहता है किन्तु यदि वे मथुरा चले गये तो फिर हम कौन सी आशा धारण करेंगी, कृष्ण के कौन से

आगमन की प्रतीक्षा करेंगी, जिसके सहारे अपने प्राणों को जीवित रखेंगी । अब तो कृष्ण की प्रतीक्षा की हमारी आशा भी नष्ट हो जाएगी । हम कृष्ण के बिना कैसे रहेंगी ?' एक अन्य गोपी ने कहा – 'मैंने तो कन्हैया को रोकने का पूर्ण निश्चय कर लिया है । रथ के जाने का एक ही मार्ग है । घर के बन्धु-बान्धव यदि रोकें तो रोकते रहें परन्तु मैं कल कन्हैया को मथुरा नहीं जाने दूँगी । हम सब मिलकर कन्हैया को लौटा लायेंगी । कन्हैया को भी हमारी बात माननी चाहिए । जाने से पहले वह भी एक बार सोचेगा कि ब्रजगोपियों के बिना मथुरा में मेरा मन कैसे लगेगा, इन गोपियों का स्मरण मुझे हमेशा सतायेगा फिर मैं मथुरा जाकर क्या करूँगा ?'

इधर यशोदा मैया को रात भर नींद नहीं आई, बिस्तर पर बार-बार करवट बदलती रहीं । सबेरा होने पर वे उठकर रोने लगीं । मैया का रुदन गोपालजी से देखा नहीं गया, वे दौड़कर मैया के पास गये और उनके आँसू पोंछते हुए बोले – 'मैया ! तू इतना क्यों रो रही है ?' मैया बोलीं – 'लाला ! तू मथुरा जा रहा है । अब मैं तेरे बिना कैसे रहूँगी, किसको अपने साथ सुलाऊँगी, किसको अपने हाथ से भोजन कराऊँगी । यदि तूने मथुरा गमन किया तो मेरा मन अत्यधिक शोकाकुल हो जायेगा । इसलिए तू ब्रज छोड़कर मत जा ।' श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! यदि तू मेरी पूछे तो मेरे मन में तो मथुरा जाने की बिलकुल भी इच्छा नहीं है । परन्तु बाबा ऐसा चाहते हैं कि हम दोनों भैया इसी बहाने मथुरापुरी घूम आयें क्योंकि इस प्रकार का आना-जाना बार-बार तो होता नहीं है, मथुरा दूर भी है । इसलिए अब बाबा के साथ घूमना भी हो जायेगा । तू चिन्ता मत कर, दो दिन के बाद मैं लौट आऊँगा । तेरे बिना मेरा मन वहाँ कैसे लगेगा ?'

कन्हैया की बात सुनकर मैया ने अपने लाला का श्रृंगार किया । कन्हैया की आँखों में अंजन लगाया, मस्तक पर तिलक लगाया, उसके केशों को सँवारा । इसके बाद मैया ने अपने हाथों से कन्हैया को भोजन कराया । मैया ने मन में यह भी सोचा कि कहीं ये वह अवसर तो नहीं है कि मैं अपने कन्हैया का अन्तिम दर्शन कर रही हूँ । कहीं ऐसा न हो कि आज के बाद मुझे अपने कन्हैया का कभी दर्शन ही न हो । कहीं ऐसा ही अवसर तो नहीं आ गया ? मैया रोती भी जा रही है और अपने लाला को भोजन भी खिलाती जा रही है । उसी समय अक्रूरजी रथ लेकर द्वार के सामने आ गये । दाऊ भैया मैया को प्रणाम करके रथ पर बैठ गये । श्यामसुन्दर ने भी जब यशोदा मैया को प्रणाम किया और जाने की अनुमति माँगी तो मैया ने कहा – 'लाला ! तू थोड़ी देर और रुक जा, मैं तुझको ऐसे नहीं जाने दूँगी ।' मैया यशोदा ने बड़े-बड़े ज्योतिषियों को बुलाया और उनसे कहा कि तुम सब बढ़िया सा मुहूर्त देखो, कौन सा मुहूर्त मेरे लाला की यात्रा को मंगलमय करेगा, मैं उसी मुहूर्त में लाला को यहाँ से भेजूँगी क्योंकि मेरा लाला शत्रु की नगरी में जा रहा है, असुर की नगरी में जा रहा है, कहीं वहाँ उसका अनिष्ट न हो जाये । मथुरा से कंस के भेजे बड़े-बड़े असुर यहाँ आये और वहाँ तो ऐसे बहुत से असुर हैं, मथुरा तो असुरों का पूरा गढ़ है । मेरा लाला असुरों की नगरी में जा रहा है तो बढ़िया से मुहूर्त में इसका प्रस्थान होना चाहिए, जिससे कि इसका कोई अमंगल न हो, मंगल ही मंगल हो । ज्योतिषी आये और यशोदाजी से बोले – 'मैया ! तू चिन्ता मत कर । तेरा बालक मथुरा में जाकर असुरों का वध ही करेगा, उन पर विजय प्राप्त करेगा । इतना ही नहीं, कंस का भी वध करके यह लक्ष्मीपति बन जायेगा ।' ज्योतिषियों की बात सुनकर मैया को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्हें थोड़ा धैर्य हुआ । मैया ने सोचा कि चलो, मेरे लाला के वहाँ जाने से मंगल ही होगा, उसका कुछ अनिष्ट नहीं होगा । श्यामसुन्दर ने कहा – 'मैया ! तू देख, हमारे यहाँ गोधन बढ़ रहा है, गायों की वृद्धि हो रही है । गायों का उत्कर्ष बढ़ने का लक्षण यही है कि जिस देश में गायों की वृद्धि होती है, उस देश का, वहाँ के निवासियों का कभी अमंगल नहीं होता है । इसलिए गोवंश के वर्धन से ऐसा प्रतीत होता है कि मथुरा में मेरा किसी भी प्रकार का अनिष्ट नहीं होगा । मैया ! तू शंका मत कर । कोई वहाँ मेरा अमंगल नहीं कर पायेगा । मंगल ही मंगल होगा क्योंकि गोवंश की कृपा हमारे ऊपर बराबर बनी हुई है । जहाँ गोवंश सुरक्षित रूप से, स्वतन्त्र रूप से श्वास ग्रहण करता है, वह देश निरन्तर वृद्धि को ही प्राप्त हुआ करता है । जहाँ बहुत सी गायें रहती हैं और ऐसी गायें, जो पूर्णतया

सुखी हों, सन्तुष्ट-पुष्ट हों, उन गायों के रहने से उस देश का, उस स्थान का मंगल ही मंगल हुआ करता है ।' इस प्रकार गोपालजी ने अपनी मैया को समझाया । अब मैया से अनुमति लेकर कृष्ण जैसे ही रथ पर बैठे और थोड़ी दूर ही रथ गया तो देखा कि गोपियों ने मार्ग को अवरुद्ध कर रखा है । अक्रूरजी ने गोपियों से प्रार्थना की कि तुम लोग मुझे मार्ग देने की कृपा करो किन्तु किसी ने भी उन्हें मार्ग नहीं दिया । किसी गोपी ने अक्रूरजी का हाथ पकड़ लिया, किसी ने घोड़ों की लगाम पकड़ ली, कोई कृष्ण का हाथ पकड़कर उन्हें समझाने लगी, कोई दाऊ भैया का हाथ पकड़कर समझाने लगी । श्रीकृष्ण ने उन सब गोपियों को सान्त्वना देते हुए कहा – 'हे ब्रजदेवियो ! केवल अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मन की वृत्ति सदा प्रेमास्पद में लगी रहे, चाहे प्रेमी कहीं भी हो, किसी भी देश में किसी भी जगह हो लेकिन मन यदि प्रेमी में है तो प्रेम का यही सच्चा लक्षण है, यही प्रेम की परिभाषा है । अंग-संग का नाम प्रेम नहीं है । मैं सदा तुम्हारे पास ही रहूँ, यह प्रेम नहीं है । मैं तुमसे दूर भी चला जाऊँ, तब भी तुम निरन्तर मेरा स्मरण करती रहो, इसी का नाम प्रेम है और हे देवियो ! तुम्हारे प्रेम का बदला तो मैं कभी चुका ही नहीं सकता । तुम जब भी मेरा स्मरण करोगी, उसी समय तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो जायेगा । मैं दो दिन में लौटकर शीघ्र ही ब्रज में आ जाऊँगा । तुम्हारे बिना मथुरा में भी मेरा मन कैसे लगेगा ?' इस प्रकार श्यामसुन्दर ने ब्रजगोपिकाओं को आश्वस्त किया और रथ को आगे बढ़ाने की अक्रूरजी को उन्होंने अनुमति दी । इधर यशोदा मैया विचार करने लगीं कि मेरे रोकने पर तो कन्हैया नहीं माना पर कम से कम गोपियों के रोकने पर तो मान जाता, ऐसा मेरा भरोसा था । अब तो इसने गोपियों को भी न जाने क्या पाठ पढ़ा दिया कि वे भी लाला को रोक नहीं रही हैं । आज की रात्रि मैं कैसे व्यतीत करूँगी ? कन्हैया के बिना यह ब्रज मुझे अनाथ सा लग रहा है । मैं कन्हैया के बिना यहाँ कैसे रहूँगी, ऐसा सोचते हुए अत्यधिक शोक वेदना के कारण मैया धरती पर गिर पड़ीं । श्यामसुन्दर रथ से उतरे और मैया के पास जाकर उनके अश्रु पोंछते हुए बोले – 'मैया ! जब तक तू सप्रसन्न मुझे जाने की अनुमति नहीं देगी तब तक मैं मथुरा गमन नहीं करूँगा । तू क्यों इतना रो रही है ?' यशोदा मैया ने कहा – 'लाला ! मैंने ऐसा सुना है कि तू मेरा पुत्र नहीं है, तू तो देवकी का पुत्र है । तू मथुरा जा रहा है तो मेरा इतना सन्देश देवकी को अवश्य दे देना कि वह मुझे तेरी माँ समझे अथवा न समझे परन्तु मुझे तेरी धाय, तेरी दासी तो समझती ही रहे । इतनी कृपा वह मुझ पर करती ही रहे । यह सन्देश मैया देवकी को अवश्य दे देना ।' यशोदा मैया की ऐसी बात सुनकर श्यामसुन्दर के कमल सरीखे नेत्रों में अश्रु भर आये, उन्होंने कहा – 'मैया ! यदि तू ऐसी बात पुनः कहेगी तो तेरा लाला फूट-फूटकर रोने लग जायेगा । देवकी मैया ने भले ही मुझे जन्म दिया हो परन्तु अनेकानेक कष्टों को सहकर मेरा लालन-पालन तो तूने ही किया है । इतना ऊधम यहाँ मैंने किया किन्तु तूने मुझे कभी डाँटा-फटकारा भी नहीं । मैया ! मैं तेरी सेवा, तेरे प्रेम को कभी भूल नहीं पाऊँगा । तू चिन्ता मत कर और सप्रसन्न मुझे मथुरा जाने की अनुमति दे । मैं अति शीघ्र वापस आ जाऊँगा ।' ऐसा कहकर गोपालजी ने मैया का चरण स्पर्श किया । यशोदा मैया के चरण स्पर्श करके और उनकी अनुमति लेकर तब श्यामसुन्दर रथ पर विराजे । इधर नन्दबाबा ग्वालबालों के साथ गोरस इकठ्ठा करके पहले ही छकड़ों पर बैठकर मथुरा के लिए प्रस्थान कर गये । कृष्ण-बलराम के साथ अक्रूरजी बात करते हुए धीरे-धीरे मथुरा की ओर बढ़े । मार्ग में ही अक्रूरजी ने यमुनाजी में स्नान किया । यमुना जल में डुबकी लगाने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें अपने ऐश्वर्यमय रूप का दर्शन कराया । यह देखकर अक्रूरजी को बड़ा ही आश्चर्य हुआ ।

इसके बाद अध्याय – ४० में अक्रूरजी ने भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति की ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – अक्रूरजी द्वारा स्तुति कर लेने के बाद भगवान् ने अपने ऐश्वर्यमय रूप को छिपा लिया । जब अक्रूरजी ने देखा कि भगवान् का वह दिव्य रूप अन्तर्धान हो गया तब वे जल से बाहर निकल आये और रथ हाँककर श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को लेकर दिन ढलते-ढलते मथुरा पहुँच गये ।

ब्रजवासियों की विरह-दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं - जब से श्रीकृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा में आये, तभी से उनका चित्त बड़ा विक्षिप्त रहा करता था। श्रीकृष्ण ब्रज की स्मृति में बड़े ही उदास रहा करते थे और प्रायः रुदन किया करते थे। उद्धवजी प्रभु के प्रिय सखा और उनके मन्त्री भी थे। वे देवगुरु बृहस्पति के शिष्य थे। भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी ज्ञानी तो बहुत हैं और देवगुरु बृहस्पति के शिष्य भी हैं। इनके ज्ञान में तो कोई कमी नहीं है किन्तु अभी प्रेम के अभाव में इनका ज्ञान शुष्क है, नीरस है और इस ज्ञान का कोई लाभ नहीं है। इनको मैं ऐसी कौन सी पाठशाला में भेजूँ, जहाँ से उद्धवजी प्रेम की शिक्षा प्राप्त करके प्रेम से परिपूर्ण हो जाएँ। भगवान् ने विचार किया कि उद्धवजी को प्रेम की शिक्षा दिलाने के लिए ब्रजभूमि ही सर्वोत्तम पाठशाला है क्योंकि जो भूखा है, जिसका स्वयं का पेट नहीं भरा, वह दूसरे की भूख क्या मिटायेगा ? जिनका हृदय मेरे प्रेम से पूर्णतया परिपूर्ण है, ऐसी प्रेम की आचार्या ब्रजगोपियों के पास यदि उद्धवजी को भेजा जाये, तब इनका ज्ञान भी जब प्रेम से सिञ्चित होगा तो यह ज्ञान सरस होगा, यह ज्ञान बढ़िया हो जायेगा।

'श्रीकृष्ण' मथुरा में 'ब्रज' की याद में प्रायः रुदन किया करते और उद्धवजी से कहते थे – **'ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।'** उद्धवजी श्रीकृष्ण से कहते कि प्रभु आप ये क्या कह रहे हैं ? आप संसार के लोगों को तो सिखाते हैं कि मोह नहीं करना चाहिए परन्तु अब इस विकट मोह ने आपको कैसे ग्रसित कर लिया, आप तो स्वयं ही मोहग्रस्त हो गये हैं। मैंने पहले तो कभी आपको रोते हुए नहीं देखा था किन्तु अब तो इस प्रकार आप रो रहे हैं कि अश्रुधारा रोके नहीं रुक रही है। एक दिन श्यामसुन्दर उद्धवजी के साथ यमुना तट पर घूमने के लिए गये। श्यामसुन्दर ने जैसे ही यमुनाजी के उस नीले प्रवाह को देखा तो उन्होंने अपनी चरण पादुका को उतारकर यमुनाजी को प्रणाम किया और रोने लगे। श्यामसुन्दर ने उद्धवजी से कहा कि जिस समय मैंने गोलोक धाम में श्रीराधारानी के साथ विहार किया, अन्तरंग लीलायें कीं, उस समय मेरे और श्रीजी के मुखमण्डल पर स्वेद बिंदु उभर आये। उन्हें देखकर सब सखियों ने हम दोनों से प्रार्थना की – 'हे युगल सरकार ! आपके मुख पर लीलाविहार से उत्पन्न हुए जो श्रम बिन्दु हैं, ये हमें पीने के लिए मिल जाएँ, आप ऐसा कोई उपाय कीजिये।' सखियों की प्रार्थना से अपने स्वेद बिन्दुओं को सखियों के पीने योग्य बनाने के लिए ही हमने उन स्वेद बिन्दुओं से यमुनाजी को प्रकट किया। अतः हम राधा-माधव के लीलाविहार के समय हमारे मुख पर जो स्वेद बिंदु उत्पन्न हुए, वे स्वेद बिन्दु ही यमुना जी के रूप में प्रवाहित हो रहे हैं। राधा-माधव का प्रेम ही यमुनाजी के रूप में प्रवाहित हो रहा है। उस यमुनाजी को देखकर श्यामसुन्दर स्वयं को रोक नहीं पाए और जोर-जोर से रुदन करने लगे। उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! आप इस प्रकार रुदन क्यों कर रहे हैं ?' उस समय श्यामसुन्दर ने उद्धवजी को श्रीजी की अन्तरंग लीलाओं के बारे में बताया। श्यामसुन्दर भूमि पर अपने चरणों को रखकर और हाथ जोड़कर श्रीजी से प्रार्थना करने लगे – 'हे स्वामिनी जू ! मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया, जिसके कारण आपने मुझे ब्रज से बाहर निकाल दिया।' श्यामसुन्दर बार-बार राधारानी से प्रार्थना करने लगे –

हे वृषभानुसुते ललिते मैं कौन कियो अपराध तिहारो।
काढि दियो ब्रजमंडल सों कछु और हू दण्ड रह्यो अति भारो॥
आपनो जान दया की निधान भई सो भई अब वेगि निवारो।
देहु सदा ब्रज को बसिबो वह कुञ्ज कुटीर यमुना को किनारो॥

श्यामसुन्दर ने श्रीजी से प्रार्थना की कि मुझसे ऐसा कौन सा अपराध हो गया कि सदा-सर्वदा के लिए आपने मुझे ब्रज के बाहर कर दिया, ब्रज से निकाल दिया। हे स्वामिनी जू ! अब कृपा करो, पुनः मुझे ब्रज में बुलाओ। ऐसा कहकर श्यामसुन्दर रोने लगे। उद्धवजी ने उन्हें सँभाला और पूछा कि प्रभो ! आप इतना क्यों रोते हैं ? श्यामसुन्दर ने कहा – 'उद्धव ! यदि गोपीजन रोना बंद कर दें तो मेरा भी रोना बन्द हो जायेगा। यदि वे रोती रहीं तो मैं भी रोता रहूँगा क्योंकि – **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** यदि वे रो-रोकर मेरी याद करती हैं तो मेरे लिए भी रो-रोकर उनका स्मरण करना स्वाभाविक है।'

उद्धवजी अपने ब्रह्मज्ञान में डूबे हुए सोचने लगे कि मैं एक बार ब्रज चला जाऊँ तो गोपियों का रोना बन्द हो

जायेगा और यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी तो कृष्ण का रोना अपने-आप ही बन्द हो जायेगा । उद्धवजी ने श्रीकृष्ण से आज्ञा माँगी – 'प्रभो ! क्या मैं एक बार ब्रज में जाकर गोपियों को ब्रह्मज्ञान के उपदेश से संतुष्ट कर आऊँ ? यदि गोपियाँ रोना बन्द कर देंगी फिर आप भी तो नहीं रोयेंगे ।' श्रीकृष्ण बोले – 'उद्धव ! यदि ब्रजवासी नहीं रोयेंगे तो मैं भी नहीं रोऊँगा ।'

उद्धवजी ब्रज जाने को तैयार हो गये । श्यामसुन्दर ने अपना पीताम्बर उतारकर उन्हें दिया और कहा –

'उद्धव ! यह पीताम्बर लेते जाओ । ये मेरा उत्तरीय लेते जाओ, मेरी वनमाला लेते जाओ । इनको धारण करके ही ब्रज में जाना क्योंकि यदि ब्रज में तुमने मेरा उत्तरीय धारण नहीं किया तो ब्रजवासी तुमसे बात भी नहीं करेंगे । ये ब्रजवासी ब्रह्मज्ञानी-वेदान्तियों से बात नहीं करते । यदि तुम मेरा उत्तरीय धारण करके जाओगे तो ब्रजवासी सोचेंगे कि इस व्यक्ति ने कृष्ण का सा वस्त्र धारण किया है, ऐसा लगता है कि यह कृष्ण का कोई परिचित है, कृष्ण का कोई घनिष्ठ सम्बन्धी है तो वे ब्रजवासी तुमसे बात करेंगे ।'

श्रीकृष्ण की प्रेरणा से उद्धवजी ब्रज पहुँचे तो वहाँ उन्होंने देखा –

इतस्ततो विलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ।
गोदोहशब्दाभिरवं वेणूनां निःस्वनेन च ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१०)

गायें भी बड़ी पुष्ट हैं, बछड़े भी पुष्ट हैं । गायों के छोटे-छोटे बछड़े इधर-उधर उछल-कूद रहे हैं । उद्धवजी सोचने लगे कि कृष्ण तो कहते थे कि सारा ब्रज मेरे विरह में रोता है, ब्रज के पशु-पक्षी तक मेरी याद करके रोते हैं परन्तु यहाँ तो इसके विपरीत हो रहा है । बछड़े आनन्द से उछल-कूद रहे हैं । ऐसा क्यों हुआ तो इसका उत्तर यह है कि ब्रज का प्रत्येक ब्रजवासी यह चाहता है कि कृष्ण कहके गये हैं कि मैं एक दिन ब्रज में लौटूँगा तो कहीं ऐसा न हो कि कृष्ण लौटकर ब्रज में आ जाएँ और हमारा शरीर कृष्ण के विरह में एकदम जर्जर हो जाये तो यह देखकर कृष्ण को कितना कष्ट होगा । जब हम ब्रजवासी कृष्ण को दुर्बल दिखायी देंगे तो उन्हें कितना कष्ट होगा, अतः श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए गाय-बछड़े खाते हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए गोपियाँ श्रृंगार करती हैं । एक बार एक गोपी ने अपनी सखी से कहा कि मैंने तो श्रृंगार करना छोड़ दिया है ।

हौं ता दिन कजरा दैहौं ।
जा दिन नन्दनन्दन के नैनन,
अपने नैन मिलैहौं ।

मैं तो अपने नेत्रों में काजल ही नहीं लगाऊँगी, मैंने तो सब श्रृंगार त्याग दिया है । उसकी बात सुनकर दूसरी गोपी ने कहा – 'अरी ! तू बावरी हो गयी है । मान ले आज संध्या तक यदि कृष्ण आ गये और तूने श्रृंगार नहीं किया है तो जब वे तुझे श्रृंगारविहीन अवस्था में देखेंगे तो क्या उन्हें प्रसन्नता होगी ? कृष्ण का मन कितना दुखी होगा और यदि कृष्ण का मन दुखी होगा तो क्या तू प्रसन्न हो जाएगी ?'

अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ श्रृंगार करती हैं, कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही गोपियाँ भोजन करती हैं । ऐसा स्वयं श्रीकृष्ण ने गोपियों के बारे में अर्जुन से कहा है – **'निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते'**

तभी तो गोपियों को भगवान् ने अपना सर्वोच्च भक्त माना है क्योंकि वे अपने शरीर को भी अपना समझकर नहीं सजाती हैं, वे तो अपने शरीर को भी कृष्ण का शरीर मानकर कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उसे सजाती हैं । उद्धवजी जब ब्रज में पहुँचे तो नन्दबाबा से मिले । नन्दबाबा और उद्धवजी के संवाद का भागवत में वर्णन है । नन्दबाबा ने उद्धवजी के मुख से जब सुना कि कंस की मृत्यु हो गयी, जबकि उनके सामने ही कृष्ण के द्वारा कंस का वध हुआ था परन्तु उन्होंने कहा –

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/१७)

उद्धव जी ! यह बहुत बढ़िया हुआ कि दुष्ट कंस मर गया । नन्दबाबा का वात्सल्य देखो, उन्होंने यह नहीं कहा कि मेरे लाला ने कंस को मारा, उन्होंने कहा कि कंस तो अपने पापों के कारण मर गया । हमारे कुलदेवता नारायण भगवान् ने उसको मार दिया अन्यथा मेरा लाला तो छोटा सा है, उसमें कहाँ इतनी ताकत है, जो इतने बलशाली कंस को मार सके ।

गोपियों के सत्संग से बने ब्रजभावुक 'उद्धवजी'

नन्दबाबा ने आगे कहा – 'उद्धवजी ! मैं कृष्ण की कुशलता के बारे में आपसे नहीं पूछूँगा । मैं तो बस एक ही बात जानना चाहता हूँ, मुझे एक बार यह बता दो कि कृष्ण ब्रज में कभी आयेंगे कि नहीं ।' यदि उद्धवजी के मुख से भूल से भी यह निकल जाता कि कृष्ण नहीं आयेंगे तो नन्दबाबा तो उसी क्षण अपने प्राण त्याग कर देते । उद्धवजी ब्रजवासियों की दशा को देखते ही यह समझ गये कि इनको मैं कभी भूलकर भी यह नहीं कहूँगा कि कृष्ण नहीं आयेंगे । उद्धवजी और नन्दबाबा के संवाद का तो भागवत में वर्णन भी है किन्तु यशोदा मैया और उद्धवजी के संवाद का शुकदेवजी ने वर्णन ही नहीं किया । यशोदा मैया के संवाद के वर्णन करने का शुकदेवजी साहस ही नहीं कर सके क्योंकि उनका ऐसा निश्छल प्रेम था कि जो अवर्णनीय है । यशोदाजी की स्थिति उद्धवजी ने देखी –

जब से बिछुड़े हैं ब्रजराज नैनन की परतीति गयी ।

मैया तो कृष्ण के विरह में अन्धी सी हो गयी थी । उसे कुछ दिखायी ही नहीं देता था । उद्धवजी ने नन्दबाबा और यशोदा मैया को संतुष्ट करने के लिए कहा –

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ।

(श्रीभागवतजी - १०/४६/३४)

'नन्दबाबा और यशोदा मैया ! आप लोग चिन्ता मत करिए । कृष्ण-बलराम दोनों भैया ब्रज में शीघ्र ही लौटेंगे ।' उद्धवजी के मुख से ऐसा सुनते ही नन्दबाबा को तो बहुत अधिक प्रसन्नता हुई । उन्होंने उद्धवजी का हाथ पकड़ लिया । यशोदा मैया भी आनन्द से भरकर नन्दभवन में मिठाइयाँ बाँटने लगीं । 'मेरा लाला लौटेगा, मेरा कनुआ वापस आएगा' – इतना सुनते ही मैया की प्रसन्नता की तो कोई सीमा ही नहीं रही । इधर, उद्धवजी के मन में ब्रजगोपियों से मिलने की इच्छा हुई । गोपिकायें नन्दभवन के बाहर के मार्ग से होकर निकल रही थीं । उन्होंने देखा कि नन्दभवन के बाहर एक रथ खड़ा हुआ है । एक गोपी ने अपनी सखियों से कहा कि कहीं ऐसा तो नहीं कि अक्रूर फिर से आ गया है । दूसरी गोपी ने कहा कि अक्रूर तो स्वामिभक्त था । उसका गुण देखो कि अपने स्वामी का हित करने के लिए हम गोपियों की हत्या करके चला गया परन्तु अब पुनः यह अक्रूर क्यों आया है ? अब तो इसका स्वामी कंस भी मर गया तो फिर अब यह किसका काम बनाने आया है ? एक अन्य गोपी ने कहा कि मरने के बाद मृत जीवात्मा का पिण्ड दान किया जाता है तो ऐसा लगता है कि अब अक्रूर हम लोगों को ले जाकर कंस का पिण्ड दान करेगा । इस प्रकार सभी गोपियाँ परस्पर चर्चा कर रही थीं कि तब तक उद्धवजी वहाँ आ गये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – गोपियों ने उद्धवजी को देखा तो उन्हें देखकर वे थोड़ा संकोच करने लगीं । उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण के सेवक उद्धवजी की आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्ण से मिलती जुलती है । समस्त गोपिकायें उनका परिचय प्राप्त करने के लिए उद्धवजी को चारों ओर से घेरकर खड़ी हो गयीं । जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो हमारे प्यारे श्यामसुन्दर का सन्देश लेकर आये हैं तो गोपियों ने उद्धवजी से कहा –

निस्स्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ।
अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/७)

'उद्धवजी ! श्रीकृष्ण हमको छोड़कर इस प्रकार चले गये, जैसे धनहीन पुरुष को वेश्या छोड़ देती है । विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद जैसे शिष्य अपने गुरु को छोड़ देते हैं, दान-दक्षिणा लेने के बाद ऋत्विज अपने यजमानों को छोड़ देते हैं और फलहीन वृक्षों को पक्षीगण छोड़ देते हैं, ऐसे ही श्रीकृष्ण हमें छोड़कर चले गये । ब्रज अनाथ हो गया है, केवल श्रीकृष्ण के स्मरण से हमारे प्राण टिके हुए हैं । श्रीकृष्ण स्मरण ही हमारा प्राणाधार बना हुआ है ।'

इसके बाद ब्रजगोपियों ने भ्रमर गीत का वाचन किया । श्रीराधारानी के चरणों के आसपास एक भ्रमर मंडराने लगा । उस भ्रमर को श्रीजी ने बहुत कूट शब्द कहे, मानो उस भ्रमर के बहाने श्रीजी उद्धवजी को प्रेम सिखा रही हैं कि उद्धव ! प्रेम किसे कहते हैं ? कृष्ण तो प्रेम करना नहीं जानते हैं । चरणों के पास मँडराते हुए भ्रमर से श्रीजी ने कहा –

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः

कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ।
वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं
यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/१२)

अरे धूर्त, कपटी ! भाग जा यहाँ से, तू मेरी मनुहार करने के लिए आया है । जाकर दर्पण में देख, तेरी मूँछों पर हमारी सौतों का कुंकुम लगा हुआ है । श्रीकृष्ण ने अवश्य ही मथुरा की उन नारियों को आलिंगन दान दिया होगा । आलिंगन काल में उन नारियों के वक्षःस्थल पर जो कुंकुम लगी होगी, वह कृष्ण की वनमाला पर लग गयी होगी और कृष्ण की वनमाला से उस कुंकुम को लेकर तू यहाँ आ गया है । तेरा मुख अपवित्र है । तू हमारी सौतों का स्पर्श करके आया है, उनके कुंकुम को ढोकर यहाँ लाया है, इसलिए हम तुझे अपना स्पर्श दान नहीं देंगी । हमें छू मत, दूर हो जा ।

भ्रमर की वृत्ति कैसी होती है, पहले वह फूल के पास आता है, उसको खूब मनाता है । बेचारा फूल उसको अपना सब कुछ दे देता है किन्तु भ्रमर उसके रस का पान करके उड़कर चला जाता है, मुड़कर फूल की ओर देखता भी नहीं है । ऐसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । महारास में उन्होंने हमारे साथ रास-विलास किया, रमण किया, रति दान किया किन्तु अब हम ब्रजगोपियों को अनाथ छोड़कर चले गये । पुष्प का रस लेकर जैसे भ्रमर उड़ जाता है, वैसे ही कृष्ण हमें छोड़कर चले गये । वे कहकर गये थे कि मैं दो दिन में लौट आऊँगा किन्तु उन्होंने आज तक भी हमारी सुधि नहीं ली । अब भी स्वयं नहीं आये, तुझे यहाँ भेज दिया, मनुहार कराने के लिए । तू हमें कृष्ण की चर्चा मत सुना । वे हमारे लिए नये नहीं हैं । हम उन्हें बहुत पहले से जानती हैं । एक बात बता, किस अवतार में, किस रूप से उन्होंने भलाई की है ? वामन के रूप में आये तो बेचारे बलि का सब कुछ छीन लिया, उसे पाश में बाँध दिया, उसके अनुचर दैत्यों को अपने पार्षदों से पिटवाया । क्या इसी को भलाई कहा जाता है ? रामावतार को धर्मरूप कहा जाता है, उसमें भी उन्होंने क्या किया, शूर्पणखा को विरूप कर दिया । किसलिए वे इतने सुन्दर हुए, बेचारी शूर्पणखा उनके रूप से मोहित होकर उनके पास आयी थी । उसका क्या दोष था ? चलो, उससे विवाह न करते परन्तु उन्होंने तो उसे विवाह के योग्य भी नहीं छोड़ा, उसके नाक-कान काट लिए । सोच लिया कि न मैं इसके साथ विवाह करूँगा और न ही किसी और के साथ इसका विवाह होने दूँगा । यह कौन सा धर्म है, यह कौन सा न्याय है ? इसलिए भ्रमर ! हमारे सामने तू उस निष्ठुर की चर्चा मत कर, उसका नाम भी मत ले ।

उद्धवजी से रहा नहीं गया, उन्होंने गोपियों से पूछा कि जब तुम कृष्ण की चर्चा सुनना नहीं चाहती हो तो फिर उनकी चर्चा करती क्यों हो ? ब्रजगोपियों ने कहा –

यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्-
सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ।

श्रीकृष्ण की लीला-कथा ऐसा अमृत है कि इस अमृत बिन्दु का एक बार भी चस्का यदि किसी को लग गया तो वह अपना घर-द्वार स्वाहा कर देगा परन्तु इस अमृत को छोड़ नहीं पायेगा । उद्धवजी ! अब उसकी चर्चा ही तो हमारा प्राणाधार रह गयी है । यदि उसकी चर्चा भी हमने छोड़ दी तो हमारे प्राण नहीं बचेंगे । गोपियों के लिए प्राण त्याग करना कोई बहुत बड़ी बात नहीं थी । वे यदि चाहतीं तो जिस समय कृष्ण ब्रज छोड़कर गये, उसी समय अपने प्राण त्याग देतीं परन्तु ब्रजाङ्गनाओं के लिए प्राण त्याग करना बड़ी बात नहीं थी, उनकी तो यही धारणा थी कि कृष्ण कहीं ब्रज में कभी भी आ गये और हम लोग मृत्यु को प्राप्त हो गयीं तो उन्हें कितना कष्ट होगा । अतः कृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही उन्होंने अपने प्राणों को धारण कर रखा था, कृष्ण के सुख के लिए ही वे जीवित थीं । उनके जीवित रहने का और कोई दूसरा प्रयोजन नहीं था । उद्धवजी ने गोपियों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करने का प्रयास किया परन्तु ब्रजदेवियों ने उनके एक-एक उपदेश का खण्डन कर दिया । उद्धवजी निर्गुण-निराकार ज्योति की उपासना बताने लगे तो ब्रजगोपियों ने उनसे कहा कि यह सीख जाकर किसी और को सिखाना । उन्होंने कहा – **जो मुख नाहिन होतो कहो किन माखन खायो** आप कहते हैं कि उनके (परब्रह्म कृष्ण के) मुख नहीं है किन्तु हमने तो श्यामसुन्दर को अपने हाथों से माखन खिलाया है । हम कैसे इस बात को स्वीकार कर लें कि हमारा कन्हैया बिना मुख वाला है । **पाँयन बिन गो संग कहो बन-बन को धायो** – आप कहते हैं कि उनके चरण नहीं हैं । यदि उनके चरण नहीं हैं तो फिर वे वन-वन में गायों के पीछे कैसे दौड़े ? गो चारण के लिए बिना चरणों के वे वन में कैसे जाते ? **आँखन में अंजन दयो गोवर्धन लयो हाथ नन्द-जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रज**

नाथ हमने अपने हाथों से कृष्ण के नेत्रों में अंजन लगाया है । इसलिए हे उद्धवजी ! आप हमें निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना मत बताइये । यह उपासना हमारे योग्य नहीं है । इसे हम धारण नहीं कर सकेंगी । इस तरह गोपिकाओं ने उद्धवजी के प्रत्येक उपदेश का खण्डन कर दिया और उन्हें अपने प्रेम रूपी ज्ञान से परिपूर्ण कर दिया । उद्धवजी आये तो इस लक्ष्य से थे कि गोपियों को ज्ञान का उपदेश करके मथुरा लौट जाऊँगा परन्तु ब्रजगोपियों के प्रेम की उच्च अवस्था को देखकर उन्हें ब्रज में रहते छः महीने व्यतीत हो गये, जाने का नाम ही नहीं लिया । मथुरा में वे कृष्ण से कहा करते थे कि आप परब्रह्म होकर रोते क्यों हैं, आपको रोना नहीं चाहिए किन्तु ब्रज में गोपियों के साथ स्वयं रोते थे क्योंकि गोपियों ने उन्हें सिखाया कि प्रेम कैसे किया जाता है ? यदि रुदन नहीं करोगे, प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए हृदय में यदि उत्कण्ठा नहीं होगी तो कैसे प्रेम करोगे । इस प्रकार ब्रजगोपियों ने उद्धवजी को उत्कृष्ट प्रेम से परिपूर्ण कर दिया । एक दिन स्वयं श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धव ! तुम्हारे मित्र श्रीकृष्ण मथुरा में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । इसलिए अब तुम मथुरा वापस चले जाओ ।' मथुरा के लिए चलते समय उद्धवजी ने भगवान् से प्रार्थना की – 'हे प्रभो ! मेरे द्वारा यदि कोई सुकृत हुआ हो तो आप मुझ पर यही कृपा कीजिये कि इस ब्रजभूमि का कोई झाड़, लता-औषधि आप मुझे बना दीजिये ।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

मुझे ब्राह्मण कुल में जन्म नहीं चाहिए, ऊँचा कुल मुझे नहीं चाहिए । ब्रज-वृन्दावन धाम में किसी भी योनि में, किसी भी जाति में मेरा जन्म हो जाये तो मेरा जीवन धन्य हो जाएगा । ब्रजभूमि में यदि मैं पाषाण ही बन जाऊँगा तो जब मार्ग के मध्य पड़ा रहूँगा तब ब्रजगोपिकाएँ जब दधि विक्रय के लिए जाएँगी तो अपने चरण तल से मुझ निश्चेष्ट पाषाण को जब एक ओर कर देंगी तो इनके पाद स्पर्श मात्र से मेरे तो जन्म-जन्मान्तर धन्य हो जायेंगे, मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा ।' ऐसा कहकर उद्धवजी गोपियों की चरण रज की वन्दना करने लगे – **वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ।**

यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(श्रीभागवतजी - १०/४७/६३)

'मैं नन्दबाबा के ब्रज में रहने वाली गोपिकाओं की चरण रज की वन्दना करता हूँ । इन ब्रजाङ्गनाओं के द्वारा श्रीकृष्ण यश का जो गायन किया गया है, उससे केवल पृथ्वी ही नहीं अपितु त्रिलोकी पवित्रता को प्राप्त हो रही है ।' ब्रज से मथुरा जाते समय श्रीजी ने उद्धवजी से कहा – 'उद्धवजी ! कृष्ण का सन्देश तो तुमने मुझसे कह दिया, कृष्ण की स्थिति भी मुझे बता दी किन्तु मैं तो हूँ वज्रमयी, मुझे कुछ नहीं हुआ परन्तु कन्हैया का मन नवनीत खा-खाकर माखन की तरह बन गया है । इसलिए श्रीकृष्ण को हम गोपियों की स्थिति के बारे में तुम जरा भी संकेत मत करना, अन्यथा उनका हृदय द्रवित हो जायेगा, उनको बहुत कष्ट होगा ।' श्रीजी व ब्रजगोपियों के चरणकमलों की वन्दना करके उद्धवजी मथुरा पहुँचे । वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका गाढ़ आलिंगन किया और उनसे कहा – 'उद्धव ! यह तुम्हारी वही देह है जो ब्रज रज से, ब्रज प्रेम से लिप्त होकर आई है । अब तुम समझे हो कि प्रेम किसे कहते हैं, अब तुम प्रेम को जान पाए हो ।' उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! अब मैं समझ गया कि पहले आप क्यों रोया करते थे ?' ऐसा कहकर वे स्वयं रोने लगे; उन्हें रोते देखकर श्यामसुन्दर हँसने लगे और बोले – 'चलो, अब जो मेरी इच्छा थी, वह पूरी हो गयी । अब तक तो यहाँ मैं एक ही रोने वाला था, अब दूसरा रोने वाला भी साथ मिल गया । अब हम दोनों साथ में बैठकर रोया करेंगे और ब्रजगोपियों का स्मरण किया करेंगे ।' उद्धवजी ने कहा – 'प्रभो ! उन ब्रजदेवियों के विरह का दुःख आपके ब्रज जाये बिना दूर नहीं होगा । मैंने तो सोचा था कि ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा उनके शोक को दूर करके आऊँगा परन्तु मैं असमर्थ रहा । उनके दुःख को दूर नहीं कर सका । जब तक आप ब्रज में नहीं जायेंगे तब तक वे ब्रजगोपियाँ आपके वियोग में सदा व्याकुल ही रहेंगी । वे भी रोती रहेंगी, आप भी रोते रहेंगे और अब आपके साथ मैं भी रोता रहूँगा ।' इस प्रकार उद्धवजी को भगवान् कृष्ण ने गोपिकाओं के द्वारा प्रेम का ज्ञान दिलवाया ।

अर्जुन का अहं-शमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – एक बार की बात है । द्वारका पुरी में किसी ब्राह्मणी के पुत्र पैदा होते ही मर जाते थे । जब भी ब्राह्मण का पुत्र मरता तो वह राजमहल के द्वार पर आकर यही कहता कि यह ब्राह्मण द्रोही, धूर्त और विषयी क्षत्रियों का दोष है जो मेरे बालक की मृत्यु हुई । नवें बालक के मरने पर जब वह राजमहल के दरवाजे पर आया और वही बात कहने लगा तो उस समय अर्जुन द्वारका में भगवान् कृष्ण के पास बैठे हुए थे । उनके सामने वह ब्राह्मण गाली देने लगा – 'आजकल के राजा बड़े पापी हैं, इनके पाप से मेरे पुत्रों की बार-बार मृत्यु हो रही है ।' अर्जुन ने उस ब्राह्मण से कहा – 'महाराज ! क्या द्वारका में आपके पुत्रों की रक्षा करने वाला कोई नहीं है ? मैं आपकी संतान की रक्षा करूँगा ।' ब्राह्मण ने कहा – 'यहाँ बलरामजी, श्रीकृष्ण आदि के रहते जब मेरे बालकों की रक्षा नहीं हो पायी तो तुम क्या रक्षा करोगे ?' अर्जुन बोले – 'नहीं, मैं अर्जुन हूँ, मैं कृष्ण नहीं हूँ, मैं बलराम नहीं हूँ । मैं मृत्यु को भी जीतकर आपका बालक वापस लाऊँगा ।'

अर्जुन की बात सुनकर वह ब्राह्मण प्रसन्नतापूर्वक घर लौट गया और प्रसव का समय निकट आने पर अर्जुन को बताया । अर्जुन ने बाणों को अनेक प्रकार के अस्त्र-मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके प्रसव गृह को चारों ओर से घेर लिया, इस प्रकार उन्होंने सूतिका गृह के चारों ओर बाणों का एक पिंजड़ा सा बना दिया । अबकी बार गर्भ से शिशु पैदा हुआ तो वह शरीर सहित ही आकाश में अन्तर्धान हो गया । अब तो वह ब्राह्मण अर्जुन को गाली देने लगा । 'धिक्कार है अर्जुन को, अपने मुँह अपनी प्रशंसा करने वाले अर्जुन के धनुष को धिक्कार है ।' जब वह ब्राह्मण अर्जुन की बहुत निन्दा करने लगा तब अर्जुन योगबल से यमपुरी में गये, वहाँ उन्हें ब्राह्मण का बालक नहीं मिला । इसके बाद वे इन्द्र, अग्नि, वायु, वरुण आदि की पुरियों में गये । अतलादि नीचे के लोकों में गये परन्तु कहीं भी वह बालक नहीं मिला । अपनी प्रतिज्ञा पूरी न होने पर 'अर्जुन' अग्नि में प्रवेश करने चले तो भगवान् ने उन्हें रोक लिया और उन्हें समझा-बुझाकर अपने दिव्य रथ पर सवार होकर अर्जुन के साथ पश्चिम दिशा की ओर गये । सात द्वीप, सात समुद्र और लोकालोक पर्वत को लाँघकर उन्होंने घोर अंधकार में प्रवेश किया । उस समय भगवान् ने अपने सुदर्शन चक्र को आगे कर दिया । अंधकार को पार करने के बाद उन्हें समुद्र मिला । उस समुद्र में एक भवन था । उस भवन में शेषनागजी की शैय्या पर विराजमान आठ भुजाओं वाले नारायण भगवान् का उन्हें दर्शन हुआ ।

अब यह प्रसंग थोड़ा जटिल है और समझने योग्य है । आचार्यों ने बताया है कि भगवान् अर्जुन को लेकर कहाँ गये थे ? ब्रह्मलोक तक तो माया है । कई आचार्यों ने मृत्युञ्जय तन्त्र का प्रमाण दिया है –

ब्रह्माण्डस्योर्द्धवतो देवि ब्रह्मणः सदनं महत् ।
तदूर्द्धवं देवि विष्णूनां तदूर्द्धवं रुद्ररूपिणाम् ॥

(श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीकृत सारार्थदर्शिनी)

ब्रह्मलोक या सत्यलोक के ऊपर वैकुण्ठ लोक है । उसके ऊपर अहङ्कारावर्णस्थ रुद्र लोक है, उसके ऊपर महाविष्णु का लोक है, जो महत्तत्त्वावर्णस्थ है, उसके आगे प्रकृत्यावरणस्थ महादेवी का लोक है, उसके ऊपर ब्रह्मपीयूषाख्य कारणार्णव है, उसके ऊपर महाकाल परव्योमस्थ महावैकुण्ठनाथ हैं, यही है महाकाल का भवन; यहीं पर भगवान् कृष्ण अर्जुन को ले गये । वहाँ जाकर उन दोनों ने महावैकुण्ठनाथ भगवान् को प्रणाम किया । अर्जुन तो उनके दर्शन से घबरा गये । उन दोनों से महाविष्णु ने कहा – 'तुम दोनों को देखने के लिए ही मैंने ब्राह्मण के बालक अपने पास मँगवा लिए थे ।'

अब यहाँ समझने की बात है कि महाविराट महाविष्णु को भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन की क्या आवश्यकता पड़ी ? उन्होंने कहा – **युवयोर्दिदृक्षुणा** – (श्रीभागवतजी - १०/८९/५९) – 'मुझे तुमको देखने की इच्छा हुई, इसलिए मैं ब्राह्मण के बालकों को यहाँ ले आया ।' कृष्ण का रूप ही ऐसा है कि उसको सब देखना चाहते हैं । स्वयं श्रीकृष्ण तक अपने रूप को देखकर विस्मित हो जाते थे ।

विस्मापनं स्वस्थ च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् –

(श्रीभागवतजी - ३/२/१२)

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को शिक्षा देने के लिए महाविष्णु को प्रणाम किया कि कोई ऋषि आये, देवता आये तो उसको प्रणाम करना चाहिए । इसके बाद महाविष्णु श्रीकृष्ण से बोले कि संसार में आपका कार्य अब पूरा हो गया है । **भूयस्त्वरयेतमन्ति मे** – (श्रीभागवत - १०/८९/५९) **इतमन्ति मे** – इसका यह अर्थ नहीं है कि मेरे पास आओ । **'त्वरयेतम्'** का अर्थ है 'जल्दी करो' अर्थात् अब पृथ्वी पर आपकी लीला का अंतिम समय आ गया है ।

धर्ममाचरतां स्थित्यै ऋषभौ लोकसंग्रहम् – (श्रीभागवतजी - १०/८९/६०) लोकसंग्रह के लिये जितने लोगों ने धर्म का आचरण किया, आप उन सबसे श्रेष्ठ हैं ।

महाविराट महाविष्णु ने जब इस प्रकार भगवान् कृष्ण से प्रार्थना की तो उन्होंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के साथ द्वारका में ब्राह्मण के बालकों को लेकर लौट आये तथा उन बालकों को उनके पिता को सौंप दिया । अर्जुन ने ऐसा अनुभव किया कि जीवों में जो कुछ बल-पौरुष है, वह सब भगवान् श्रीकृष्ण की ही कृपा है ।

भागवत के एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने नर-नारायण को अपनी विभूति माना है ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि मेरे बड़े भाई बलरामजी नित्य धाम को गमन कर गये तो वे एक पीपल के पेड़ के नीचे जाकर चुपचाप बैठ गये । उस समय वहाँ जरा नामक एक बहेलिया आया । उसे दूर से भगवान् का लाल-लाल तलवा हरिन के मुख के समान प्रतीत हुआ, उसने उसे हिरन ही समझकर अपने बाण से बींध दिया । जब वह पास आया और देखा कि ये तो भगवान् हैं तब तो वह भयभीत हो गया और प्रभु से क्षमा माँगने लगा । भगवान् ने उसे अभयदान देते हुए स्वर्गलोक को भेज दिया । भगवान् का सारथि दारुक उनका पता लगाता हुआ उनके पास पहुँच गया । भगवान् ने उससे कहा – 'दारुक ! तुम द्वारका चले जाओ और वहाँ यदुवंशियों के संहार, भैया बलरामजी की परम गति तथा मेरे स्वधाम गमन की बात कहो । अर्जुन से मिलकर उनसे कहना कि मेरे माता-पिता और पत्नियों को लेकर वे इन्द्रप्रस्थ ले जायें ।'

भगवान् का आदेश पाकर दारुक उन्हें प्रणाम करके उदास मन से द्वारका चला गया ।

इस प्रसंग में आचार्यों ने अपनी टीका में लिखा है कि प्रभास क्षेत्र में सूर्यास्त के समय अरबों-खरबों की संख्या में यदुवंशियों की लड़ाई शुरू हुई तो वहाँ बहेलिया कहाँ से आ गया ? इस बात को समझो । सूर्यास्त होने पर अन्धकार हो चुका था, जहाँ अरबों-खरबों वीर लड़ाई में कट रहे थे, वहाँ बहेलिया कैसे आ गया और हिरन का शिकार कैसे करने लगा ? इसका उत्तर देते हुए आचार्यों ने बताया है कि यह सब भगवान् की माया है । इसी प्रकार अर्जुन जब श्रीकृष्ण पत्नियों को इन्द्रप्रस्थ ले जा रहे थे तो भीलों ने आकर उन्हें हरा दिया और श्रीकृष्ण पत्नियों का हरण करके ले गये । यदुवंशियों के विनाश से लेकर अर्जुन को भीलों द्वारा लूटे जाने की घटना भगवान् द्वारा रचा गया इन्द्रजाल था । यह भगवान् के विशुद्ध इन्द्रजाल की माया थी । उन्हें एक क्षण में सबको गायब करना था, नहीं तो सूर्यास्त के समय इतने अधिक यदुवंशियों का संहार कैसे हो सकता था ? महाभारत युद्ध हुआ, उसमें अट्ठारह अक्षौहिणी सेना थी और वह युद्ध अट्ठारह दिनों तक चला । जबकि यदुवंशी बालकों के आचार्यों की संख्या ही खरबों से अधिक नील में थी । इतने अधिक यदुवंशियों का नाश सूर्यास्त के समय थोड़ी ही देर में कैसे हो गया ? आचार्यों ने लिखा है कि भगवान् ने अपनी माया से लीला रचकर सबको उनके लोकों में भेज दिया और अपने लिए भी माया रच दी, एक बहाना बना लिया कि बहेलिया आया और उनके चरणों को हिरन का मुख समझकर बाण चला दिया । वस्तुतः भगवान् की इस अनिर्वचनीय माया को कौन जान सकता है ? महाभारत के स्वर्ग पर्व में वर्णन आता है कि महाभारत के जितने भी कर्ण आदि योद्धा थे, वे मरकर पुनः अपने परिवार वालों के पास आये और एक रात उनके साथ रुके । ये सब भगवान् की माया है । वस्तुतः भगवान् के पार्षदों की मृत्यु नहीं होती है । यह तो एक जादू सा हुआ कि वे पृथ्वी पर आये और अपना कार्य समाप्त कर भगवद्धाम को चले गये ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं – भगवान् की आज्ञा से दारुक के चले जाने पर ब्रह्माजी, शिव-पार्वती, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि और इन्द्रादि देवगण भगवान् श्रीकृष्ण की परम धाम गमन लीला को देखने के लिए आये कि भगवान् किस प्रकार इस संसार से जाते हैं ? भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी और अन्य देवताओं को देखा ।

योगधारणयाऽऽग्नेय्यादग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् –

(श्रीभागवतजी - ११/३१/६)

उन्होंने योगधारणा के द्वारा अपने शरीर को जलाया नहीं । किसी को यह नहीं सोचना चाहिए कि भगवान् का शरीर जल गया । वे उसी शरीर से अपने धाम में चले गये ।

भगवान् के इस प्रकार जाने को न ब्रह्माजी देख पाए, न महादेवजी देख पाए । कोई देवता, कोई ऋषि-मुनि नहीं देख पाए ।

देवादयो ब्रह्ममुख्या न विशन्तं स्वधामनि ।
अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चातिविस्मिताः ॥

(श्रीभागवतजी - ११/३१/८)

जब भगवान् अपने धाम में प्रवेश करने लगे तो ब्रह्मादि देवताओं को भी उनकी गति दिखाई नहीं पड़ी । ब्रह्मा-शिव आदि देव अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण को अपने धाम जाते हुए हम लोग देख ही नहीं सके ।

भगवान् यदि चाहते तो अपने शरीर को सदा के लिए इस पृथ्वी पर रख सकते थे फिर भी उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

इधर दारुक द्वारका आया और उसने वसुदेवजी तथा उग्रसेनजी को यदुवंशियों के विनाश और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के स्वधाम गमन के बारे में बताया । उसे सुनकर द्वारका में उपस्थित सभी लोग बहुत दुखी हुए और अत्यधिक दुःख के कारण मूर्च्छित हो गये । भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर सभी लोग वहाँ पहुँचे, जहाँ यदुवंशी निष्प्राण होकर पड़े हुए थे । देवकी, वसुदेव तथा रोहिणीजी अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण व बलराम को न देखकर बेहोश हो गये और उन्होंने विरह से व्यथित होकर वहीं अपने प्राण छोड़ दिए । स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के शव को लेकर चिता पर बैठकर भस्म हो गयीं । भगवान् श्रीकृष्ण की रुक्मिणी आदि पटरानियाँ उनके ध्यान में मग्न होकर अग्नि में प्रविष्ट हो गयीं । भगवान् की लीला में सहायिका उनकी योगमाया शक्ति ने लोकशिक्षार्थ इन पटरानियों का अग्नि प्रवेश आदि दिखाकर अन्त में उन सबका श्रीजी में सन्निवेश करा दिया ।

अर्जुन अपने सखा भगवान् श्रीकृष्ण के विरह से अत्यधिक व्याकुल हो गये, फिर उन्होंने प्रभु के गीता के उपदेशों का स्मरण करके अपने मन को सँभाला । यदुवंश के मृत व्यक्तियों में, जिनको कोई पिण्ड देने वाला न था, अर्जुन ने उन सबका विधिपूर्वक श्राद्ध करवाया । भगवान् के न रहने पर समुद्र ने भगवान् श्रीकृष्ण के निवास स्थान को छोड़कर सारी द्वारका डुबो दी ।

.....

दधि-दानलीला

मोय दैजा दधि कौ दान गुजरिया बरसाने वारी ॥
या मारग ते नित ही निकसौ, भरी गरूर गुमान ।
दान दही कौ आज लेऊँगो, तुम सब रस की खान ।
ठाले डोलौ तुम क्यों लाला, मेंटौ कुल की कान ।
मैं तो ब्रज कौ चन्द्र छबीलौ, ठाले कैसे जान ।
बिना दान के जान न दूँगो, ये ही मेरी आन ।
सुनके मुसक्याई वह ग्वालिन, हरि कौ राख्यौ मान ।
अपने हाथन दह्यो खवायो, कर लीनी पहचान ।
बहुविधि दान दियो चित्तचोरहि, दीयो नागर पान ।
गली सांकरी रस में डूबी, कोयल गावै गान ॥

आजा आजा नंदलाल दही मीठो ॥
ऐसो मीठो कबहु न खायो, लड्डुआहू है गयो सीठो ।
बरसाने को सब कुछ मीठो, दूध दही माखन मीठो ।
पै भागन ते मिलै नंद के, करनों परै बहुत नीठो ।
ऐसी भई सब ढीठ गोपिका, ऐसोइ तू बन गयो ढीठो ।
ग्वाल ऊपर ग्वाला ठाढ़े, ठाढ़ो तू सब कै पीठो ।
तो यह पायी दही मथनियां, भजचल कहूं न परै दीठो ।
आय गई तौ लौं घरवारी, खाय भजै मारै गूंठो ॥

(बाबाश्री कृत रसिया रसेश्वरी से संकलित)

असली आध्यात्मिकता 'विशुद्ध भक्ति'

एक दिन देवहूतिजी अपने पुत्र भगवान् कपिल से बोलीं – 'हे प्रभो ! आप मुझे घोर अज्ञान के अन्धकार से पार कीजिये । आप तो नेत्र-स्वरूप हैं, मैं आपकी शरण में हूँ ।' कपिल भगवान् बोले – 'आध्यात्मिक योग से ही जीव का कल्याण होता है ।'

हम सब लोग अपने को आध्यात्मिक समझते हैं किन्तु आध्यात्मिक किसे कहते हैं, इसे समझो ।

भगवान् कपिल ने कहा कि अध्यात्म योग में मनुष्य का प्रवेश तभी होता है, जब दुःख और सुख से मनुष्य की अत्यन्त उपरति हो जाती है । न तो उसे दुःख व्यापता है और न सुख में प्रसन्नता होती है, तब उसका अध्यात्मयोग में प्रवेश होता है । बात बनाना तो अलग है लेकिन अगर किसी के घर में मौत हो जाए या कोई रोग हो जाए अथवा धन का गम्भीर घाटा हो जाए तो सबके चेहरे उदास हो जायेंगे । अतः अभी तो हमलोगों का आध्यात्मिक योग में प्रवेश ही नहीं हुआ है, शुरुआत ही अभी नहीं हुई है और भगवान् कपिल ने जो अपने उपदेश का सबसे पहला श्लोक बोला, वह यही बोला कि यदि तुम्हें आध्यात्मिक योग में प्रवेश पाना है तो उसके लिए पहली आवश्यकता यह है कि तुम सुख–दुःख से ऊपर उठ जाओ । ईश्वर प्रेम भी इसी को कहते हैं कि जो कुछ भी हमारा प्यारा कर रहा है, हम उसी में सुखी रहें किन्तु संसार के लोग तो जरा–जरा सी बात पर दुखी होते रहते हैं कि चार पैसे का घाटा हो गया, बेटा–बेटी बीमार हो गए ।

कपिल भगवान् ने कहा –

योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५ /१३)

भगवान् ने यह पहला ज्ञान अपनी माँ को दिया । इसके बाद भगवान् बोले कि यह चित्त ही बन्धन कराता है और चित्त ही मुक्ति कराता है । कोई दूसरा नहीं कराता है ।

चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ।
गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५/१५)

'चेतः' अर्थात् चित्त; 'चित्त' किसे कहते हैं, इसे समझो । हम लोगों का चित्त बन्धन क्यों करा रहा है ? चित्त की परिभाषा है– **'चिनोति आत्मनि मलं इति चेतः'** हम लोगों का चित्त केवल गंदगी, मल–मूत्र का भोग इकट्ठा कर रहा है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं करता । जबकि जो महापुरुषों का चित्त होता है, वह क्या करता है –**'चिनोति आत्मनि भगवत्तत्वम्'** उनका चित्त श्रीकृष्ण को इकट्ठा करता है । **'चिनोति आत्मनि श्रीकृष्ण तत्त्वम्'** – 'तत्त्वम्' से अभिप्राय है - श्रीकृष्ण-तत्त्व । इस हिसाब से महापुरुषों का चित्त भी चित्त है और हमारा चित्त भी चित्त है लेकिन इकट्ठा करने वाली जो वस्तु है, वह अलग-अलग है । कोई हीरा इकट्ठा कर रहा है और कोई मल-मूत्र इकट्ठा कर रहा है । इसे चित्त कहते हैं, यही मन है । जो बात देवहूतिजी ने कही थी, उसी सिद्धान्त को '३/२५/२०' में भगवान् दोहरा रहे हैं –

प्रसङ्गमजरं पाशं आत्मनः कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारं अपावृतम् ॥

(श्रीभागवतजी - ३/२५/२०)

आसक्ति 'आत्मा' का अजर बन्धन है, ऐसा विवेकीजन मानते हैं । जैसे – स्त्री-पुरुष की परस्पर कामासक्ति होती है, वह बन्धन है; किन्तु वही आसक्ति यदि महापुरुषों के प्रति हो जाती है तो मोक्ष का दरवाजा खुल जाता है ।

महापुरुष भी कर्दमजी जैसा होना चाहिए, गड़बड़ी तभी होती है, जब हम जैसे लोग अपने मल-मूत्र के शरीर को घोषित करते हैं कि हम महापुरुष हैं । आसुरी भाव में हम लोग जो महापुरुष होने का ढोंग करते हैं, गड़बड़ी वहीं से शुरू होती है । यह बात खोल के इसलिए समझाई जा रही है ताकि हम लोग महापुरुषों की महिमा को जानें, दुरुपयोग के लिए नहीं ऐसा कहा जा रहा है । इस बात को लोग छिपाते हैं । यह छिपाने की बात नहीं है, महापुरुषों की महिमा हम लोग नहीं जानेंगे तो भक्ति कैसे जानेंगे ? **राम ते अधिक राम कर दासा** – महापुरुष की महिमा तो तुम्हें जानना ही होगा, इसे छिपाने से क्या होगा ? आगे कपिल भगवान् कहते हैं कि साधु कैसे होते हैं ?

तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ।

अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/२१)

वे अजातशत्रु होते हैं, शान्त होते हैं । तीन गुण भौतिक बताये तथा चार गुण आध्यात्मिक बताये । आध्यात्मिक भी कई गुण बताये हैं । इन गुणों की संख्या वल्लभाचार्यजी ने अपनी भागवत की टीका में बहुत अच्छी लिखी है ।

भगवान् कहते हैं कि महापुरुष लोग हर समय मेरी कथा को सुनते और कहते हैं, वे कृष्ण संग से इतर (बाहर) नहीं जाते हैं । जो व्यक्ति कृष्ण संग से इतर जाएगा, वह तो धोखा खा जाएगा, चाहे कोई आचार्य हो चाहे गोस्वामी हो, कृष्ण चर्चा से जो इतर है, उसका तो पतन निश्चित है । अब आगे भगवान् भक्ति का लक्षण बता रहे हैं ।

देवानां गुणलिङ्गानां आनुश्रविककर्मणाम् ।
सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/३२)

यहाँ देवानां का अर्थ है इन्द्रियाँ । यद्यपि देव शब्द का अर्थ होता है देवता । हमारी जो ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हैं, ये बिना प्रयास के कृष्ण में लगी रहें, इसी का नाम भक्ति है । हमारा जो मन है तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हैं जैसे आँख से देखना, कान से सुनना, जीभ से बिना प्रयास के ही 'भगवन्नाम' निकलता रहे, जैसे गोपियों के बारे में लिखा है –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितो–क्षणमार्जनादौ ।
गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥

(श्रीभागवतजी १०/४४/१५)

हर कार्य को करते समय, बिना प्रयत्न के ही उनकी वाणी से हर समय कृष्ण गुणगान होता रहता था । हम लोगों को तो अभी भक्ति में मन लगाना पड़ता है कि इतनी देर माला करेंगे, इतनी देर कीर्तन करेंगे किन्तु ऐसा अभ्यास पड़ जाना चाहिये कि अपने आप जीभ सदा भगवन्नाम लेती रहे । कर्मेन्द्रियाँ भी अपने आप ही कृष्ण में लगें, मन भी अपने आप कृष्ण में लगे, उसका नाम भक्ति है यानी लगाना न पड़े, स्वयं ही बिना प्रयास के कृष्ण में लगा रहे, उसका नाम भक्ति है । वल्लभाचार्यजी ने 'देवानाम्' का बड़ा सुन्दर अर्थ किया है । वे लिखते हैं कि जो इन्द्रियाँ कृष्ण में लगती हैं, वे तो देव हैं, वहाँ उन्होंने उपनिषदों का भी प्रमाण दिया है । जो इन्द्रियाँ कृष्ण में नहीं लग रही हैं, वे असुर हैं । इसीलिए यहाँ पर देवानां लिखा है । ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, अब यहाँ पर एक प्रश्न उठता है और यह आचार्यों ने लिखा है कि आँख से दर्शन करेंगे, कान से कथा सुनेंगे, वाणी से कीर्तन करेंगे, हाथ से सेवा करेंगे अर्थात् सभी ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ तो कृष्ण भक्ति में लग जायेंगी किन्तु मल–मूत्र की इन्द्रिय भगवान् की सेवा में कैसे लगेगी ? आचार्य कहते हैं कि मल–मूत्र की इन्द्रिय भी कृष्ण में लगेगी, कैसे लगेगी ? विष्णुधर्मोत्तर पुराण में लिखा है –

मलमूत्रपरित्यागाच्चित्तस्वास्थ्यं यतो भवेत् ।
अतः पायुरुपस्थश्च तदाराधनसाधनम् इति

मल–मूत्र की इन्द्रिय यदि गड़बड़ करती है तो शरीर का स्वास्थ्य खराब हो जाता है । यदि शौच न हो तो दूषित वायु निकलती रहेगी और भगवान् में भी मन नहीं लगेगा । इसलिए मल–मूत्र की इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, उपस्थ इन्द्रिय को भी संयम चाहिए, नहीं तो अधिक भोग के कारण कृष्ण से विमुख हो जाओगे, प्रह्लादजी ने यह बात कही है । अतः इन्द्रियों का संयम करना ही, इन्हें कृष्ण में लगाना है । ३/२५/३२ में सत्त्व का अर्थ मन है । वल्लभाचार्यजी ने लिखा है कि दो प्रकार की इन्द्रियाँ है – देवरूपाणि, असुररूपाणि – **'एकानि देवरूपाणि एकान्यसुररूपाणि ।'** 'भगवद्भक्ति' में लगने वाली इन्द्रियाँ देवरूपाणि हैं । भक्ति कैसी होनी चाहिए, अनिमित्त निष्काम होनी चाहिए । किसी मतलब से भक्ति नहीं करनी चाहिए ।

अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।

(श्रीभागवतजी ३/२५/३३)

ऐसी 'भक्ति' मुक्ति से भी बड़ी है । मुक्ति से कैसे बड़ी है ? इस तरह बड़ी है कि क्या भगवान् कभी किसी ब्रह्मज्ञानी का रथ हाँकने गए हैं, केवल अर्जुन का ही रथ उन्होंने हाँका था । क्या भगवान् किसी ब्रह्मज्ञानी की सेवा करने गये हैं किन्तु ब्रज में गोपी कहती है – 'कन्हैया, मेरी गोबर की हेल उँचा जा, गगरी उँचवा जा, मैं तुझे माखन का लौंदा दूँगी ।' कन्हैया पूछते हैं कि कितने लौंदा देगी ? गोपी कहती है जितनी हेल उँचवायेगा, उतना लौंदा दूँगी । कन्हैया ने पूछा कि मुझे कैसे पता पड़ेगा कि कितनी हेल

उँचवायी । गोपी बोली – 'जितनी हेल उँचवायेगा, उतना गोबर का ठप्पा तेरे गाल पर लगा दूँगी ।' कृष्ण बोले – 'ठीक है, शर्त मंजूर है ।' गोपी ने कहा कि बेईमानी नहीं होनी चाहिए । अब कन्हैया ने गोबर की हेल उँचवाई तो गोपी ने एक ठप्पा उनके गाल पर लगा दिया और बोली कि अब तुझे एक लौंदा मिल जाएगा । जब दो–चार हेल हो गयी तो कन्हैया ने कुछ बेईमानी की और एक–दो ठप्पा गाल पर अपनी ओर से अधिक लगा लिए ताकि माखन ज्यादा मिल जाए । गोपी ने देखा तो बोली – 'लाला, बेईमानी करता है, अब एक भी लौंदा नहीं मिलेगा, मैंने तो छः (६) हेल गिन रखे हैं और तूने तीन अपनी ओर से बढ़ा लिए ।' अब श्रीकृष्ण इस तरह क्या किसी ब्रह्मज्ञानी की दासता कर सकते हैं ? ग्वाललीला में कृष्ण श्रीदामा को अपने कंधे पर बिठाकर ले जाते हैं, क्या कभी किसी ब्रह्मज्ञानी को भगवान् ने अपने कंधे पर बिठाया है । इसीलिए कपिल भगवान् कहते हैं कि भक्ति मुक्ति से भी बड़ी है । मेरे भक्त आपस में मिलकर दिन–रात मेरे रूप की, मेरी लीला की चर्चा करते हैं, इसलिए बिना चाहे ही भक्ति उनको परम पद दे देती है, मुक्ति उनको अपने आप मिल जाती है । **अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टांगमनुप्रवृत्तम् ।** (३/२५/३७) सत्य आदि लोक की विभूति भी उन्हें मिल जाती है । मेरे वैष्णव धाम का ऐश्वर्य भी उन्हें स्वतः प्राप्त हो जाता है ।

न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः । काल मेरे भक्तों को नहीं चाट सकता है । वे काल के ऊपर उठ जाते हैं । जो भगवान् की भक्ति करता है, काल उसका कुछ नहीं कर सकता, कैसे भक्त ? जिनका मैं ही सब कुछ हूँ । **येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥** (श्रीभागवतजी ३/२५/३८)

मैं ही जिनका प्रिय हूँ (जैसे लक्ष्मीजी के प्रिय हैं भगवान्) । मैं ही जिनका आत्मा हूँ (जैसे सनकादिक मुनियों की आत्मा हैं भगवान्)। मैं ही जिनका बेटा हूँ, (जैसे यशोदाजी के बेटा हैं भगवान्), मैं ही सखा हूँ, (जैसे अर्जुनजी के सखा हैं भगवान्), मैं ही पिता हूँ (प्रद्युम्न के पिता श्रीकृष्ण हैं), मैं ही सुहृद हूँ (जैसे पाण्डवों के सुहृद थे), मैं ही भक्तों का दैव हूँ, मैं उनका सब कुछ हूँ, मैं ही गुरु हूँ; ऐसे भक्तों का काल कुछ नहीं बिगाड़ सकता है ।

विसृज्य सर्वान् अन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ।
भजन्ति अनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये ॥

(श्रीभागवतजी ३/२५/४०)

जो भक्त मेरे लिए अपना घर, धन, पशु तथा अन्य सभी वस्तुओं को छोड़ देते हैं, उन्हें मैं मृत्युरूप संसार सागर से पार कर देता हूँ । भगवान् के लिए सब कुछ छोड़ना पड़ता है तभी तो चैतन्य महाप्रभु ने कहा है– **'बिना सर्वत्यागं न हि भवति भजनं यदुपतेः ।'**

सर्वत्याग के बिना कृष्ण भजन नहीं हो सकता है । भगवान् कहते हैं कि जो मेरे लिए सब कुछ छोड़ देता है, **तान्मृत्योरतिपारये** – उसे मैं अपने कंधे पर उठाकर मृत्यु के पार ले जाता हूँ, **अतिपारये** – पार ही नहीं अतिपार अर्थात् बड़े लाड़–प्यार से ले जाता हूँ ।

गोपिकाओं का कृष्णप्रेम

कैसे नाहिं करूँ जब दधि माँगै,
अँखियन में भर-भर पानी ॥

प्यारो वह नंद जू को छैया, कर जोर परै मेरे पैंया,
कैसे मुख फेरूँ जब आशा सों देखै मोकों मनमानी ।
मैं चतुर नार करी चतुराई, घूँघट ते देखत पछताई,
कैसे आँख चुराऊँ वाते है गई नई-नई पहचानी ।
बचके मैं चली किनारो देय, चुनरी पकरी मेरो नाम लेय,
कैसे कानन मूंदूं कहै मोते जब प्यारी वह दधि दानी ।
वह छाय गयो मेरे हियरे, बस रह्यो वो नैनन में मेरे,
कैसे रोकूँ जागत सोवत रटती, कृष्ण नाम यह बानी ।
कोई मोते लै लेओ री गोपाला ॥
दधि को नाम न लेवै ग्वालिन, टेरत मदन गोपाला ।
जिनको नाम श्याम सुन्दर है, है यशुदा के लाला ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में, नटखट नैन विशाला ।
बनी बावरी कुंज गलिन में, ढूंढत ब्रज हरि ग्वाला ॥

(रसिया रसेश्वरी)

RNI REFERENCE NO. 1313397- REGISTRATION NO. UP BIL-2017/72945-TITLE CODE UP BIL-04953 POSTAL REGD.NO. 093/2021-2023
मान मन्दिर सेवा संस्थान के लिए प्रकाशक/मुद्रक एवं संपादक राधाकांत शास्त्री द्वारा गुप्ता ओफ्सेट प्रिंटर्स A-125/1,wazipur industriyal area,nem delhi-52 सेमुद्रित एवं मान मन्दिर सेवा संसथान,गह्वरवन,बरसाना,मथुरा (उ.प्र.) सेप्रकाशित [AGRA/WPP-12/2021-2023 AT 22.12.23]